ष्ण की ओर
श्री ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

कृष्ण की ओर

भगवत्कृपामय श्रील् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापक आचार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्री कृष्ण भावना सङ्घ

अनुवादक डा. विश्वनाथ शुक्ल, रीडर हिन्दी विभाग, मु. विश्वविद्यालय,

अलीगढ़

भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट

हरे कृष्ण लैंड, गाँधी ग्राम रोड,
जुहू बम्बई–४०० ०४९

इस पुस्तकमें दी हुई माहितीके विषयोंमें पत्रव्यवहार करनेके इच्छुक पाठकोंको निम्नलिखित पते पर पत्रालाप करने की विनंती है।

इन्टरनेशनल सोसायटी फोर कृष्ण कोन्श्यसनेस
हरे कृष्ण लैन्ड, गांधीग्राम रोड, जूहू, बम्बई-४०० ०४९

हिज डिवाइन ग्रेस ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा लिखित पुस्तकें :—

भगवद् – गीता यथावत
श्रीमद् – भागवतम्, स्कन्धेश 1–9 (27 खंड)
श्री चैतन्य चरितामृत (17 खंड)
महाप्रभु चैतन्य की शिक्षाएं
भक्ति रसामृत सिंधु
अनुदेश रसामृत
श्री ईशोपनिषद्
अन्य लोकों की सुगम यात्रा
कृष्ण भावना – सर्वोत्तम योग – पद्धति
कृष्ण (परमात्मा का सर्वोच्च व्यक्तित्व (3 खंड)
परिपूर्ण प्रश्न, परिपूर्ण उत्तर

प्रह्लाद महाराज की पारलौकिक शिक्षाएं
कृष्ण – आनन्द के भंडार
जीवन, जीवन से आता है
योग की पूर्णता
जन्म और मृत्यु से परे
कृष्ण के मार्ग पर

राज विद्या (ज्ञान का राजा)
कृष्ण भावना (अतुलनीय भेंट)
भगवद् दर्शन पत्रिका (संस्थापक)

विनती पर परिपूर्ण कैटलॉग प्राप्य हो सकेगा
भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, हरेकृष्ण लैंड, जुहू—बंबई ४९.

पहली आवृत्ती — जून १९७८ / प्रतीयाँ २०,०००
दूसरी आवृत्ती — जून १९७९ / प्रतीयाँ २०,०००

Published by Gopal Krishna Das Adhikari for the Bhaktivedanta Book Trust, Hare Krishna Land, Juhu, Bombay. and Printed by A. E. Subramaniam, Orion Offset Printers, 4-Dhanraj Industrial Estate, Sun Mill Road, Lower Parel, Bombay 400 013. Telephone-378643.

इस ग्रन्थ की विषय-वस्तु में रुचिवान् पाठकों को अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ अपने निम्नलिखित भारतीय केन्द्रों से सम्पर्क तथा पत्र-व्यवहार करने के लिए आमन्त्रित करता है:

अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ

१. हरे कृष्ण लैण्ड, जुहू, बम्बई—४०००५४
२. २१/ए, फिरोज गाँधी रोड, नई दिल्ली—११००२४
३. श्रीकृष्ण बलराम-मन्दिर, भक्तवेदान्त स्वामी मार्ग, रमणरेती वृन्दावन, (मथुरा उ. प्र.) दूरभाष: १७८
४. हरे कृष्ण लैण्ड, नमपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद—५०००० १। (आ. प्र.)
५. इस्कोन, हरे कृष्ण लैण्ड, दक्षिण मार्ग, नं. ५६६ सेक्टर, ३६-बी चण्डीगढ़ (पंजाब)
६. ७, कैलाश सोसाइटी, आश्रम रोड, अहमदाबाद (गुजरात)
७. ३६, क्रिसेन्ट रोड बंगलोर—१
८. ३, एल्वर्ट रोड, कलकत्ता—७०००१७ (पं बंगाल)
९. श्रीमायापुर चन्द्रोदय मन्दिर, पो. श्रीमायापुर धाम (नदिया, पं. बंगाल)
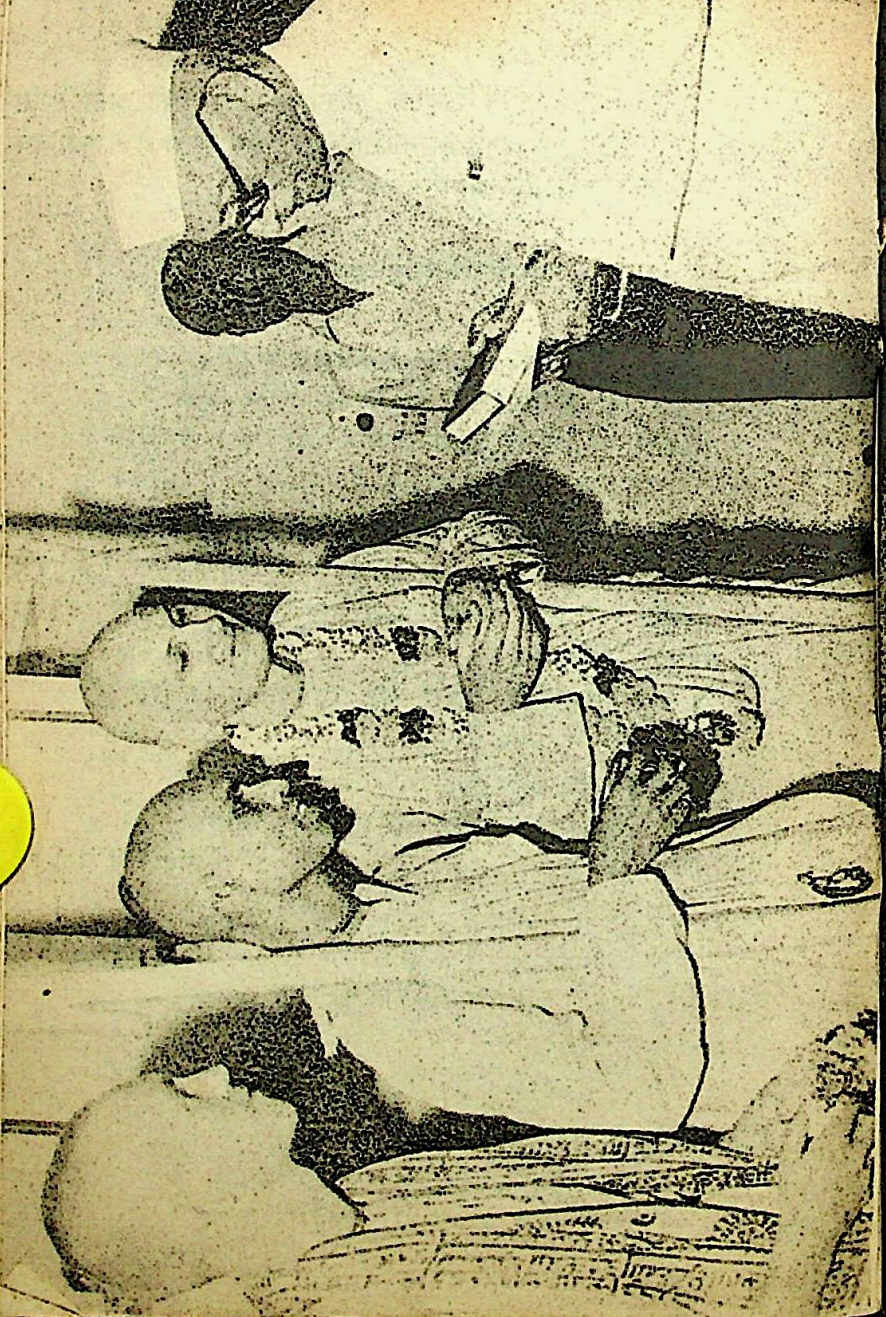
विषय-सूची

१. आनन्द का सीधा मार्ग

हममें से प्रत्येक व्यक्ति आनन्द की खोज में हैं, किन्तु हम नहीं जानते कि सच्चा आनन्द या सुख क्या है। हम अपने चारों ओर आनन्द या सुख का विज्ञापन तो बहुत देखते हैं। किन्तु प्रत्यक्षत: सुखी लोग बहुत ही कम दिखाई देते हैं। इसका कारण यह है कि बहुत ही कम लोग यह जानते हैं कि सच्चे आनन्द की स्थिति नश्वर पदार्थों से परे है। यह वह सच्चा आनन्द है जिसका विवेचन श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के प्रति किया है।

सुख का अनुभव साधारणतया इन्द्रियों के माध्यम से होता है। उदाहरण के लिए, एक पत्थर के पास कोई इन्द्रिय नहीं है अत: वह सुख या दु:ख कुछ भी अनुभव नहीं कर सकता। विकसित चेतना अविकसित चेतना की अपेक्षा सुख और दु:ख का अधिक गहराई से अनुभवकर सकती है। वृक्षादि में चेतना है, किन्तु वह विकसित नहीं। वृक्ष सभी ऋतुओं में दीर्घकाल तक खड़े रह सकते हैं, पर उनके पास दु:खानुभव करने का कोई साधन नहीं है। किन्तु यदि किसी मानव को वृक्ष के समान दो या तीन दिन खड़ा रखा जाय तो वह यह सहन नहीं कर सकेगा। सारांश यह है कि प्रत्येक चेतन प्राणी अपनी चेतना के विकास के अनुसार ही सुख-दु:ख का अनुभव किया करता है।

इस भौतिक संसार में हम जो सुख अनुभव कर रहे हैं वह सच्चा सुख नहीं है। यदि कोई व्यक्ति किसी वृक्ष से पूछे, "क्या तुम सुखी हो ? तो यदि वृक्ष बोल सकता तो कहता, "हाँ मैं सुखी हूं। वर्ष भर यहीं खड़े-खड़े वायु और हिमपात का आनन्द ले

रहा हूँ" आदि आदि। एक वृक्ष इस प्रकार की स्थिति में आनन्द अनुभव कर सकता है, परन्तु मानव के लिए आनंदानुभव-का यह एक अत्यन्त निम्नस्तर है। चेतन प्राणियों के विभिन्न प्रकार और श्रेणियां हैं, और उनके सुख की परिकल्पना और अनुभूति भी विभिन्न प्रकार और श्रेणियों की है। यद्यपि एक पशु देख सकता है कि दूसरे पशु की हत्या हो रही है तथापि वह घास खाता रहेगा, क्योंकि उसके पास समझने की कोई योग्यता नहीं है कि वह भी ऐसे ही मारा जाएगा। वह सोचता है कि मैं सुखी हूँ, पर दूसरे ही क्षण वह मारा जा सकता है।

इस प्रकार सुख की नाना कोटियां हैं, किन्तु इन सब में सर्वोच्च सुख क्या है ? श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

"उस परमानन्द की स्थिति (समाधि-अवस्था) में साधक योगी इन्द्रियों से परे अनन्त आनन्द का अनुभव करता है। इस प्रकार स्थित हुआ योगी भगवत्स्वरूप सत्य से कभी विचलित नहीं होता।" (श्रीमद्भगवद्गीता ६.२१)

यदि कोई मानव आनन्द प्राप्त करना चाहता है तो उसे बुद्धि की आवश्यकता है। पशुओं के पास वस्तुतः विकसित बुद्धि नहीं होती। इसलिए वे जीवन का ऐसा आनन्द नहीं ले सकते जैसा मानव ले सकते हैं। एक मृत व्यक्ति के भी हाथ, पैर, आँख, नाक आदि सब इन्द्रियां होती हैं, फिर भी वह आनन्द अनुभव नहीं कर सकता। ऐसा क्यों ? ऐसा इसलिए होता है कि आनंदानुभव करने की वास्तविक चेतन शक्ति उस शरीर से लुप्त हो गयी और शरीर निर्जीव हो गया। यदि हम बुद्धिपूर्वक इस विषय में थोड़ा अधिक विचार करें तो पायेंगे

कि जो वास्तव में आनन्द उठा रहा था, वह शरीर नहीं था, अपितु उसके भीतर रहने वाला सूक्ष्म चैतन्य था। मनुष्य चाहे समझे कि वह शारीरिक इन्द्रियों के माध्यम से सुख उठा रहा है, किन्तु वस्तुतः आनन्द भोक्ता तो सूक्ष्म आत्म-स्फुलिंग है। उस स्फुलिंग में आनन्दोपभोग की सामर्थ्य सदा रहती है, भौतिक आवरण के कारण वह सामर्थ्य निरन्तर अभिव्यक्त नहीं होती। हमें पता हो या नहीं, उस स्फुलिंग के बिना शरीर के लिए आनन्द सम्भव नहीं हो सकता। यदि किसी पुरुष को एक सुन्दर मृत स्त्री का शरीर अर्पित किया जाय तो क्या वह उसे स्वीकार करेगा? कभी नहीं, क्योंकि उस शरीर से आत्म-स्फुलिंग तिरोहित हो चुका है। पहले आत्म-स्फुलिंग उसी स्त्री शरीर में न केवल आनन्दोपभोग ही कर रहा था, अपितु उस शरीर को धारण भी कर रहा था। जब वह आत्म-स्फुलिंग तिरोहित हो जाता है, तब शरीर केवल नष्ट होकर सड़ने लगता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि आत्मा आनन्दोपभोग करती है तो इसके साथ इन्द्रियाँ भी रहती हैं। अन्यथा यह आनन्दोपभोग कर कैसे सकती है? वेद कहते हैं कि यद्यपि आत्मा अणु के समान सूक्ष्म है, तथापि यही वास्तव में आनन्द का उपभोक्ता है। आत्मा को नापना-तोलना असम्भव है, इसका यह अर्थ नहीं कि आत्मा का कोई परिमाण ही नहीं है। जो पदार्थ हमें एक विन्दु से अधिक न लगे और जिसकी कोई लम्बाई चौड़ाई भी दिखाई न दे, उसे भी यदि हम अणुवीक्षण यंत्र से देखें तो उसमें हमें लम्बाई चौड़ाई दोनों दिखायी देंगी। इसी प्रकार आत्मा का भी अपना परिमाण और विस्तार है, पर हम उसका अनुभव नहीं कर सकते। जब हम कोई वस्त्र खरीदते हैं तो उसे शरीर के अनुरूप परिधान बनाया

जाता है। आत्मस्फुलिंग का भी आकार होना चाहिए, अन्यथा भौतिक शरीर उसे धारण करने योग्य कैसे होता ? सारांश यह है कि आत्मा निर्विशेष नहीं है। यह यथार्थ में सविशेष स्वरूप है। ईश्वर एक पुरुष-विशेष है और उसका अंश होने के कारण आत्मा का भी अपना सविशेष स्वरूप है। यदि पिता में निजी स्वरूप और सृजनात्मक सविशेषता है तो पुत्र में भी ये अवश्य होंगे और यदि पुत्र में हैं तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि पिता में भी होंगे। अतः भगवान् की सन्तान होकर हम अपने स्वरूप और वैशिष्य को तो आग्रहपूर्वक स्थापित करें और अपने परम पिता में उनका निराकरण करें, यह कैसे हो सकता है ?

'अतीन्द्रियम्' पद का अर्थ यह है कि यथार्थ आनन्द या सुख का अनुभव करने के लिए हमें अपनी भौतिक इन्द्रियों के परे जाना होगा। **"रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दचिदात्मनि:"** जो योगी अध्यात्म के अभिलाषी हैं, वे भी अपने अन्तःकरण में स्थित परमात्मा पर चित्त को एकाग्र करके सुखानुभव करते हैं। यदि वहाँ सुख और आनन्द न हो तो इन्द्रियों के दमन का इतना कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है ? इतना कष्ट उठाने के अन्त में योगिजन किस प्रकार का आनन्दानुभव करते हैं यह आनन्द अनन्त है। वह कैसे ? आत्मा अनादि अनन्त है और परमात्मा भी अनादि अनन्त है, अतः उनमें परस्पर प्रेम का आदान-प्रदान भी अनादि अनन्त है। जो मनुष्य वास्तव में बुद्धिमान् होगा वह क्षणिक, भौतिक इन्द्रिय-जन्य सुख से निवृत्त होकर अध्यात्म-सुख में स्थिर होना चाहेगा। परमात्मा के साथ अध्यात्म के स्तर पर यह सम्मिलन ही रास-लीला है।

हमने वृन्दावन में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की रासलीला

के विषय में प्रायः सुना है। यह लीला भौतिक शरीरधारियों के बीच होने वाली साधारण प्रेम-क्रीड़ा जैसी नहीं है। यह वस्तुतः चिन्मय देहों द्वारा व्यक्त होने वाले भावों का विनिमय है। इस रहस्य को समझने के लिए विशेष बुद्धि की आवश्यकता है, क्योंकि यथार्थ सुख को न जानने वाला व्यक्ति इस प्राकृत जगत् में ही सुख खोजता है। एक जनश्रुति है कि एक व्यक्ति को यह भी नहीं पता था कि इक्षुदण्ड (गन्ना) क्या होता है। उसे केवल इतना वताया गया था कि गन्ना चूसने में वहुत मीठा होता है। उस व्यक्ति ने पूछा, 'गन्ना देखने में कैसा होता है? तो किसी ने कहा "गन्ना देखने में बाँस के समान लगता है।" बस यह सुना था कि वह मूर्ख व्यक्ति बाँस की आकृति वाली सव लकड़ियाँ चूसने लगा। परन्तु इससे उसे गन्ने की मिठास का अनुभव कैसे हो सकता था। इसी प्रकार हम भी सुख और आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं पर हम मूर्खतापूर्वक चूस रहे हैं यह भौतिक शरीर जिसमें कोई सुख और आनन्द नहीं है। कुछ क्षणों के लिए उसमें सुख और आनन्द का आभास हो सकता है, परन्तु वह वास्तविक सुख नहीं है क्योंकि वह अस्थायी है। वह आतिशवाजी के खेल जैसा है जो आकाश में बिजली की भाँति क्षणभर को चमक कर लुप्त हो जाता है। वास्तविक बिजली तो इससे परे है। साधारण मानव प्राणी नहीं जानता कि सच्चा सुख क्या है, इसलिए वह सच्चे सुख के मार्ग से विमुख ही रहता है।

सच्चे सुख और आनन्द में प्रतिष्ठित होने के लिए मनुष्य के सामने एक ही मार्ग है—कृष्णभावना का मार्ग। कृष्णभावना द्वारा हम शनैः शनैः शुद्ध बुद्धि का विकास करते हैं और सहज रूप से जैसे जैसे आध्यात्मिक उन्नति करते हैं, आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव करने लगते हैं। इस आनन्द की प्राप्ति के अनुपात में हम भौतिक सुखों को स्वेच्छा से

ठुकराने लगते हैं। जब परम सत्य के साक्षात्कार में प्रगति होती है तो स्वाभाविक रूप से ही झूठे सुखों से विरक्ति होने लगती है। जब सौभाग्य से कोई मानव कृष्ण भावना की उस स्थिति पर पहुंच जाता है तब क्या फल-प्राप्ति होती है?

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

"जिस सुख को प्राप्त करके साधक फिर किसी और सुख को उससे अधिक नही समझता और स्थिति में होने पर वह बड़े से बड़े दु:ख से भी विचलित नहीं होता। (गीता ६.२२)

जब मनुष्य ऐसी स्थिति को प्राप्त कर लेता है तो उसे अन्य उपलब्धियां तुच्छ प्रतीत होने लगती हैं। इस प्राकृत जगत् में हम धन, स्त्रियाँ, यश, सौन्दर्य, ज्ञान आदि बहुत से पदार्थ प्राप्त करने का यत्न करते हैं किन्तु जैसे ही हम कृष्णभावना में स्थित हो जाते हैं, हम सोचते हैं,—"ओह! दूसरा कोई भी लाभ इससे बढ़कर नहीं है।' कृष्णभावना इतनी शक्तिशाली है कि इसका अति अल्प साधन भी महान् संकट से रक्षा कर सकता है। ज्यों ही कोई मनुष्य कृष्णभावना का आस्वादन आरम्भ करता है त्यों ही वह अन्य तथा कथित सुखों और लाभों को स्थूल और नीरस समझने लगता है। जो कृष्णभावना में दृढ़ता से स्थित है, उसे तो बड़े से बड़ा संकट भी उद्विग्न नहीं कर सकता। जीवन में न जाने कितने संकट हैं—सच पूछिए तो यह प्राकृत जगत् संकटों का घर ही है। किन्तु हमने इस ओर से आंखें मूंद रखी हैं और मूर्खतावश हम इन संकटों के साथ समझौते का प्रयत्न भी करते हैं। इसके विपरीत यदि जीव कृष्णभावना का अभ्यास करता हुआ फिर ईश्वरोन्मुख हो जाय तो संकटों की चिन्ता नहीं रहेंगी। उस समय मनः स्थिति यह होगी "संकट तो आते जाते ही रहते हैं। कोई चिन्ता नहीं

उन्हें आने दो।" जब तक मनुष्य भौतिक धरातल पर रहता है और स्वयं को नश्वर पाँच भौतिक तत्त्वों से निर्मित स्थूल शरीर के रूप में देखता है तब तक ऐसी मनः स्थिति प्राप्त करना बड़ा कठिन है। जो कृष्णभावना में जितनी भी प्रगति करता है वह शारीरिकता और भौतिकता और भौतिक बन्धनों से उतना ही मुक्त होता चला जाता है।

श्रीमद्भागवत में इस प्राकृत जगत् की तुलना एक महासागर से की गई है। इस भौतिक ब्रह्माण्ड के अन्तरिक्ष में लक्ष-लक्ष और कोटि-कोटि ग्रह-नक्षत्र भ्रमायमान् हैं। हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि इसमें कितने आन्ध्र और प्रशान्त महासागर होंगे। वास्तव में यह भौतिक, ब्रह्माण्ड जन्म, मृत्यु और दुःखों का एक महासागर ही है। इस अज्ञान के महासागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नौका की आवश्यकता है। वह सुदृढ़ नौका है, श्रीकृष्ण के चरणकमल। हमें इस नौका पर तुरन्त ही आरूढ़ हो जाना चाहिए। हमें यह सोचकर संकोच नहीं करना चाहिए कि श्रीकृष्ण के चरण तो बहुत छोटे हैं, वास्तव में समस्त ब्रह्माण्ड उनके चरणों में विश्राम पाता है। यह प्रसिद्ध ही है कि श्रीकृष्ण के चरणकमल में शरणागत हुए पुरुष के लिए यह भौतिक, ब्रह्माण्ड, गोवत्स के खुर-चिह्न में भरे जल से अधिक नहीं रहता। गो-खुर को पार करना निश्चित रूप से कुछ भी कठिन नहीं है।

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योग संज्ञितम्।

"यही भौतिक संयोग से उत्पन्न हुए समस्त क्लेशों से वास्तविक मुक्ति है।" (गीता ६-२३)

असंयमित इन्द्रियों के कारण ही इस प्राकृत जगत् में हम

फँसे हुए हैं। योग प्रक्रिया का लक्ष्य इन इन्द्रियोंका सयम करना है। यदि किसी प्रकार हम इन्द्रियों का संयम कर सकें तो वास्तविक आध्यात्मिक आनन्द की ओर उन्मुख हो सकते हैं और अपना जीवन सफल बना सकते हैं।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा।
संकल्प प्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ॥
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।
शनैः शनैरुपरमेद बुद्ध्या धृति गृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत्।
यतोयतो निश्चलति मनश्चंचलमस्थिरम् ॥
ततस्ततो नियम्यैतद् आत्मन्येव वशं नयेत् ॥

"साधक पुरुष को अविचल दृढ़ता और विश्वास के साथ योगाभ्यास करना चाहिए। वह मिथ्या अहंकार से उत्पन समस्त भौतिक इच्छाओं को त्याग दे और मन से सब ओर से इन्द्रियों का संयम करे। इस प्रकार साधक को धीरे-धीरे क्रमशः पूर्व विश्वास के साथ, अन्य किसी का भी चिन्तन न करते हुए मन को आत्मा में स्थिर करना चाहिए। यह चंचल और अस्थिर मन जहाँ-जहाँ भी चलायमान् हो, वहाँ-वहां से इसको रोककर आत्मा में ही लगायें।"

मन सदा अस्थिर रहता है; कभी इधर जाता है, तो कभी उधर। योगाभ्यास से हम मन को कृष्ण-भावना की ओर खींचते हैं। मन कृष्ण-भावना से दूर अनेक बाह्य विषयों की की ओर दौड़ता है, क्योंकि अनादि काल से और जन्म-जन्मांतर से इसकी यही प्रवृत्ति रही है। फलतः जैसे ही साधक को प्रारम्भ में अपने मन को श्रीकृष्ण की ओर उन्मुख करने में बड़ी कठिनाई होती है, पर फिर धीरे-धीरे मन कृष्णोन्मुख होने लगता है।

इसका कारण यह है कि मन अशान्त रहता है, श्रीकृष्ण की ओर उन्मुख नहीं होता, अपितु एक विचार से दूसरे विचार में चला जाता है। उदाहरण के लिए कभी-कभी ऐसा होता है कि जब हम किसी काम में लगे होते हैं तो मन में अचानक ऐसी घटनाओं की स्मृति जागृत हो उठती है जो दस, बीस, तीस या चालीस वर्ष पहले घटित हुई थी। ऐसा क्यों होता है, इसका कोई प्रत्यक्ष कारण प्रतीत नहीं होता। ये विचार हमारे उपचेतन मन से ही आते रहते हैं जो सदा अशान्त रहता है। यदि हम किसी झील या तालाब का आलोडन करें तो उसके तल से सारी कीचड़ ऊपर आ जायगी। इसी प्रकार जब मन अशान्त होता है तो उपचेतन मनसे अनेक विचार आ खड़े होते हैं जो उसमें वर्षों से संचित हुए रहते हैं। 'यदि तालाब को आन्दोलित न किया जाय तो कीचड़ तल में बैठ जायगी। इसी प्रकार यह योग सारे विचारों को लय करके मन को शान्त करने की प्रक्रिया है। मन को उद्विग्न और अशान्त होने से रोकने के लिए अनेक यम-नियम हैं। यदि इनका पालन किया जाय तो मन शनैः शनैः वश में आ जाता है । यदि कोई वास्तव में मन को वश में करना चाहता है, तो उसे अनेक प्रकार के विधि-निषेधों का अवश्य पालन करना होगा। अविचार पूर्वक केवल स्वेच्छा से कार्य करने पर मन के संयत होने की कोई सम्भावना नहीं रहेगी। जब मन उस दृढ़ स्थिति पर पहुंच जाता है, जहां वह श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी और विषय का चिन्तन नहीं करता, वह स्थिर हो जाता है और उसे शान्ति प्राप्त हो जाती है

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्त रजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥

"जिस योगी का मन मुझ में स्थित है, वह निश्चय ही

परमानन्द को प्राप्त करता है। ब्रह्मभूत होकर वह जीवन्मुक्त हो जाता है।" (श्रीमद्भगवद्गीता ६-२७)

मनुष्य का मन निरन्तर सुख के पदार्थों के लिए युक्ति करता रहता है। वह सदा यही सोचता रहता है-'मुझे यह सुखी बना देगा, वह सुखी बना देगा। सुख यहाँ है, सुख वहाँ है।" इस प्रकार मन यहाँ वहाँ भटकता रहता है। यह ठीक अनियन्त्रित घोड़े से युक्त रथ पर आरूढ़ होने जैसा ही है। हमारा इस बात पर कोई नियंत्रण नहीं कि हम कहाँ जा रहे हैं। हम तो बस असहाय और भयभीत हुए बैठे ही रह सकते हैं। किन्तु ज्यों ही मन कृष्णभावना युक्त होने की प्रक्रिया में, विशेष रूप से 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण। कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे ।।' महामंत्र के कीर्तन द्वारा कृष्ण परायण होने की प्रक्रिया में प्रवेश करता है त्यों ही मन और इन्द्रियों के अनियंत्रित घोड़े हमारे वश में आ जाते है। हमें अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को कृष्ण-सेवा में लगाना चाहिए जिससे उस उद्विग्न और अशान्त मन को रोका जा सके जो हमें व्यर्थ ही इस नाशवान् प्राकृत जगत में एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ की ओर खींचा करता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्म संस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥

"समस्त पापों से मुक्त होकर आत्मा में स्थित हुआ योगी ब्रह्म साक्षात्कार के द्वारा आनन्द की चरम कोटि को प्राप्त कर लेता है।" (श्रीमद्भगवद्गीता ६·२८)

श्री कृष्ण अपने शरणागत भक्त के सब प्रकार से संरक्षक बन जाते हैं। जब कोई कठिनाई में होता है, तो उसका संरक्षक उसकी रक्षा करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा

गया है कि श्री कृष्ण ही प्रत्येक प्राणी के सच्चे सुहृद हैं। हमें तो केवल उनसे अपनी इस अनादि मैत्री को पुनर्जाग्रत करना है। इसका उपाय है, कृष्णभावना आन्दोलन में सम्मिलित होना। कृष्णभावना के अभ्यास द्वारा भौतिक सुखों की कामना शान्त हो जायगी। यह आसक्ति ही हमें कृष्ण से दूर किये हुए है। श्रीकृष्ण हमारे हृदय में निरन्तर विराजमान हैं, और अपनी ओर उन्मुख होने के लिए हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश हम भौतिक सुखोपभोग में अतिशय लीन हैं। भौतिक सुखों को भोगने की यह बलात् क्रिया समाप्त होनी ही चाहिए और हमें अपने शुद्ध स्वरूप-ब्रह्मभाव में ही स्थित होना चाहिए।

२. कृष्ण-संकीर्तन और कृष्ण को जानने की विधि

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥

यह दिव्य नाद है। हमारे मनरूपी दर्पण पर पड़ी हुई धूल को हटाने में यह सहायक होगा। इस समय हमने अपने मन-रूपी दर्पण पर सांसारिकता की इतनी धूल चढ़ा रखी है, जैसे न्यूयार्क नगर के सेकण्ड एवेन्यू में अत्यधिक यातायात के कारण प्रत्येक वस्तु पर धूल और कालिमा जम जाती है। हमने भौतिक कार्यकला में चतुराई दिखाकर अपने मन रूपी स्वच्छ दर्पण पर इतनी धूल संचित करली है कि उसके कारण हमें अब संसार में कुछ भी ठीक-ठीक नहीं दिखाई देता। हरे कृष्ण मन्त्र का यह इन्द्रियों से अतीत दिव्य शब्द-स्पन्दन हमारे मन-दर्पण से सांसारिक प्रपंचों की यह धूल हटाकर हमें अपने वास्तविक स्वरूप का दर्शन करने की क्षमता प्रदान करता है। ज्यों ही हमें यह बोध होगा कि "मैं यह शरीर नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ और चैतन्य ही मेरा स्वरूप-लक्षण है" त्यों ही हम सच्चे आनन्द में प्रतिष्ठित हो जाएंगे। जैसे जैसे हरे कृष्ण मन्त्र के संकीर्तन से हमारी चेतना शुद्ध होती जायगी, वैसे वैसे ही हमारे सारे भौतिक दुःख लुप्त होते जाएंगे।

इस भौतिक जगत् में सदा दुःखों की ज्वाला उठती रहती है। प्रत्येक प्राणी उसे बुझाने की चेष्टा कर रहा है। किन्तु इस दुःखमयी ज्वाला के बुझने की तब तक कोई सम्भावना

नहीं है, जब तक हम अपने शुद्ध-बुद्ध चैतन्य आत्मस्वरूप में स्थित नहीं हो जाते।

इस भौतिक जगत् में भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार का एक उद्देश्य धर्म-संस्थापन के द्वारा समस्त प्राणियों के सांसारिक क्लेशों से होने वाले ताप को दूर करना है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मनं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

"हे अर्जुन, जब-जब जहाँ-जहाँ धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ। साधु सज्जन पुरुषों की रक्षा, दुष्ट-दुर्जनों के विनाश और धर्म की पुनः संस्थापना के लिए मैं प्रत्येक युग में अवतरित होता हूँ।"
(श्रीमद्भगवद्गीता-४.७-८)

इन श्लोकों में 'धर्म' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द का आंग्ल भाषा में विभिन्न प्रकार से रूपान्तर हुआ है। कभी-कभी इस शब्द को 'फेथ' अर्थात् विश्वास के रूप में अनूदित किया जाता है। किन्तु वैदिक साहित्य के अनुसार 'धर्म' एक विश्वास-मात्र नहीं है। विश्वास बदल सकता है, किन्तु धर्म नहीं बदला करता। जल की तरलता को नहीं बदला जा सकता। वह उसका स्वरूपभूत धर्म है। उदाहरण के लिए, यदि जल बर्फ के रूप में ठोस बन जाता है, तो वस्तुतः वह अपने मूल स्वरूप में नहीं रहता। वह किन्हीं विशेष परिस्थितियों में उस दशा में रहता है। हमारा धर्म अथवा हमारा मूलभूत यह स्वरूप है कि हम परम्ब्रह्म के अंश हैं। यदि ऐसा है तो हमें अपनी चेतना को ब्रह्मभूत करना ही होगा।

परमात्मा के प्रति हमारे इस दिव्य सेवा-भाव का भौतिक सम्बन्धों के कारण दुरुपयोग हो रहा है। हमारे मूल स्वरूप में सेवा-भाव अनिवार्य रूप से निहित है। प्रत्येक मनुष्य सेवक है। स्वामी कोई नहीं। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी की सेवा करता है। यद्यपि राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख कार्यकारी अध्यक्ष है, तथापि वह राज्य का सेवक है, और जब उसकी सेवाओं की आवश्यकता नहीं रहती तो राज्य उसको अवकाश दे देता है। यह समझना कि 'मैं सब का स्वामी हूँ', निश्चित रूप से माया है। इस प्रकार देहात्म बुद्धि के कारण हमारी सेवा-वृत्ति का विभिन्न नामरूपों में दुरुपयोग किया जा रहा है। जब हम इन नामरूपों से मुक्त हो जाएंगे, अर्थात् जब हमारे मनरूपी दर्पण से अज्ञान की धूल हट जायगी, तो हम अपने आपको अपने मूलस्वरूप में कृष्ण के अनादि सेवक के रूप में देख सकेंगे। मनुष्य को यह नहीं समझना चाहिए कि भौतिक जगत् में उसकी सेवायें वही हैं, जो आध्यात्मिक वातावरण में होंगी। हमें यह सोचने में कदाचित् संकोच होगा, कि 'क्या मुक्त हो जाने के उपरान्त भी मैं सेवक ही रहूँगा।' ऐसा इसलिए लगता है कि प्राकृत जगत् में सेवकपन का हमारा अनुभव कोई बहुत सुखमय नहीं रहा है। किन्तु दिव्य-सेवक ऐसा नहीं है। वैकुण्ठ जगत् में सेवक और स्वामी में कोई अन्तर नहीं होता जबकि प्राकृत जगत् में इनमें महान् अन्तर है। सिद्ध जगत्—वैकुण्ठ-जगत् में प्रत्येक वस्तु एक तत्त्व है। उदाहरण के लिए श्रीमद्-भगवद् गीता के उपदेश के प्रसंग में हम देखते हैं कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सारथी रूप में एक सेवक की स्थिति ग्रहण की, किन्तु व्यवहार में हम देख सकते हैं कि कभी-कभी स्वामी भी सेवक का सेवक बन जाता है। इसलिए हमें ध्यान रखना चाहिए कि हम अपने लौकिक विचार आध्यात्मिक क्षेत्र में न ले जाएं। भौतिक रूप में हम जो अनुभव करते हैं, वह वैकुण्ठ-

जगत् के जीवन की विकृति-प्रतिच्छवि ही है।

जब हमारा मूलस्वरूप या धर्म, पांच भौतिक पदार्थों के दोषों से अधोगति को प्राप्त हो जाता है तो भगवान् स्वयं अवतार के रूप में आते हैं या अपने किसी अत्यन्त विश्वसनीय सेवक को भेजते हैं। ईसामसीह अपने-आपको ईश्वर का पुत्र कहते थे। इसलिए वे परमात्मा के प्रतिनिधि हैं। इसी प्रकार मुहम्मद ने अपने-आपको परमात्मा का एक सेवक कहा है। इस प्रकार हमारे मूल-स्वरूप या धर्म में जब भी विकृति आती है, तब हमें जीवन की वास्तविक स्थिति बताने—उसका धर्म समझाने के लिए या तो श्रीभगवान् स्वयं अवतरित होते हैं या अपने किसी प्रतिनिधि को भेजते हैं।

इसलिए किसी को भी इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि 'धर्म' कोई कल्पित या निर्मित 'विश्वास' मात्र है। अपने वास्तविक अर्थ में 'धर्म' जीव से कभी भी पृथक नहीं हो सकता उसके साथ धर्म का सम्बन्ध ऐसा ही है, जैसा शर्करा के साथ मिठास का, नमक के साथ खारे पन का या पत्थर के साथ घनत्व का। यह सम्बन्ध किसी भी प्रकार से दूर नहीं हो सकता। जीव का धर्म सेवा करना है। हम स्पष्ट देख सकते हैं कि प्रत्येक जीव की वृत्ति या तो अपनी सेवा करने की है या दूसरों की सेवा करने की। श्रीकृष्ण की सेवा कैसे की जाय, भौतिक दासता से अपने आप को कैसे मुक्त किया जाय, कृष्ण भावना कैसे प्राप्त की जाय, और भौतिक उपाधियों से कैसे छूटा जाय। ये सब बातें भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता में वैज्ञानिक विधि से समझाई हैं।

'परित्राणाय साधूनाम्' श्लोक में आया हुआ 'साधु' शब्द पवित्राचारण से युक्त सज्जन व्यक्ति का बोध कराता है। संत जन क्षमाशील, दयालु, समस्त प्राणियों के मित्र और

सदा शान्त चित्त होते हैं। एक सदाचारी पुरुष के छब्बीस गुण होते हैं, और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं घोषणा की है:—

अपिचेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवस्थितो हि सः ॥

"यदि कोई अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भी मुझे अनन्य भक्ति पूर्वक भजता है, तो उसे साधु ही समझना चाहिए क्यों कि वह यथार्थ निश्चय वाला है। (श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ९.३०) भौतिक धरातल पर एक व्यक्ति के लिए जो नैतिकता है, दूसरे के लिए वही अनैतिकता हो सकती है। हिन्दू विचार धारा के अनुसार मदिरा पान एक अनैतिक कर्म है, जबकि पाश्चात्य जगत् में यह एक सामान्य बात है और वहाँ उसे बिल्कुल अनैतिक नहीं माना जाता। अतः सिद्ध होता है कि नैतिकता की मान्यता समय, स्थान, परिस्थिति, सामाजिक स्थिति, आदि पर अवलम्बित है। किन्तु यह बात भी सत्य है कि प्रत्येक समाज में नैतिकता और अनैतिकता को कुछ न कुछ धारणा अवश्य है। उपर्युक्त श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि चाहे कोई व्यक्ति दुराचारी ही क्यों न हो, किन्तु यदि वह कृष्णभावना से युक्त है, तो उसे साधु ही मानना चाहिए। दूसरे शब्दों में पूर्व संस्कार के कारण यदि किसी में कुछ अनैतिक प्रवृत्तियां हों भी पर यदि वह पूर्णतया कृष्णभावना में स्थित है, तो इन दुष्प्रवृत्तियों को बहुत महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। जो कुछ भी स्थिति हो, यदि कृष्णभावनाभावित हो जाय वह धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है और 'साधु' बन जाता है। ज्यों ही कोई व्यक्ति कृष्णभावना की ओर अग्रसर होता है, उसकी दुष्प्रवृत्तियाँ नष्ट होने लगती है और वह साधुता की पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। इस सम्बन्ध में एक चोर की की कहानी है जो पवित्र तीर्थ

की यात्रा के लिए गया। मार्ग में वह अन्य तीर्थ यात्रियों के साथ रात्रि विश्राम के लिए एक धर्म शाला में ठहरा। चोरी का अभ्यस्त होने के कारण वह अन्य यात्रियों के सामान की चोरी करने की योजना बनाने लगा। किन्तु उसने सोचा कि "मैं तीर्थ यात्रा के लिए जा रहा हूँ अतः चोरी करना ठीक नहीं। मैं ऐसा नहीं करूँगा।" इस पर भी अपनी सहज प्रवृत्त के कारण वह अपने हाथों को वश में नहीं रख सका। उसनें एक यात्री का सामान दूसरे स्थान पर रख दिया, दूसरे यात्री का सामान कहीं और रख दिया। वह रात भर सामान को रखता-उठाता रहा किन्तु उसकी अन्तरात्मा उसे धिक्कारती रही, फलतः वह उस सामान में से कुछ भी नहीं ले सका। प्रातः काल जब अन्य यात्री जागे, तो उन्होंने अपने सामान की ओर ध्यान दिया किन्तु उन्हें अपना सामान नहीं मिला। वहां बड़ा कोलाहल मचा। और अन्त में एक-एक करके उन्हें विभिन्न स्थानों से अपना सामान मिलने लगा। जब सब को सामान मिल गया तो चोर ने सही बात बताई, "सज्जनों, मैं व्यवसाय से एक चोर हूं। रात को चोरी करने की मेरी आदत है। आपके थैलों में से मैं कुछ चुराना चाहता था। किन्तु मैंने सोचा कि एक पवित्र तीर्थ स्थान को जा रहा हूं अतः चोरी करना असम्भव है। मैंने आप लोगों का सामान इधर से उधर तो कर दिया है पर चुराया कुछ नही है। कृपया मुझे क्षमा करें।" चोर की इस कहानी का उद्देश्य दुष्प्रवृत्ति स्वरूप दिखाना है। यद्यपि चोर अब चोरी नहीं करना चाहता था, तथापि पूर्वाभ्यास के कारण कभी-कभी कर बैठता था। इसलिए कृष्ण कहते हैं जो अपनी दुष्प्रवृत्ति से दूर रहकर कृष्ण भावना की ओरअग्रसर हो रहा है, उसे साधु हीं समझना चाहिए, चाहे पूर्वाभ्यास के कारण कभी-कभी अपनी असत् प्रवत्तियों के सामने झुक जाता हो। अगले श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं :—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

"वह शीघ्र ही, धर्मात्मा हो जाता है जो स्थायी शान्ति प्राप्त करता है। हे कुन्तिपुत्र ! प्रतिज्ञापूर्वक घोषणा कर कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।"

ऐसा पुरुष कृष्णभावना में प्रतिष्ठित है, इसीलिए श्रीकृष्ण यहां घोषणा करते हैं कि वह शीघ्र ही सदाचारी हो जाता है। जैसे बिजली के पंखे का तार निकाल देने पर भी पंखा कुछ देर तक चलता रहता है, किन्तु यह निश्चय है कि पंखा थोड़ी देर में अवश्य रुक जायगा। वैसे ही जब हम श्रीकृष्ण के चरण-कमलों की शरण ले लेते हैं तो हम अपने सकाम कर्मों का छटका बंद कर देते हैं और यद्यपि ये कर्म कुछ दूरी तक चलते रहते हैं तथापि यह निश्चित है कि वे शीघ्र समाप्त हो जायेंगे। यह नितान्त सत्य है कि जो कोई भी कृष्णभावना का आश्रय लेता है, उसे सदाचारी बनने के लिए पृथक् रूप से कोई परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता। समस्त सद्गुण स्वतः उसमें आ जाते हैं। श्रीमद्भगवदगीता में कहा गया है कि जो व्यक्ति कृष्ण भावना को प्राप्त हो जाता है, वह एक साथ सब सद्गुण भी प्राप्त कर लेता है। इसके विपरीत जो ईश्वर-विश्वासी नहीं है, उसमें चाहे जो भी उत्तम गुण हों, सब व्यर्थ हैं, क्योंकि वह अवांछित कर्मों को करने से नहीं रुकेगा। कृष्णभावना रहित व्यक्ति इसप्राकृत जगत् में अनाचार किये बिना रह ही नहीं सकता।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ॥
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

"इस प्रकार जो व्यक्ति मेरे दिव्य जन्म और कर्मों को वस्तुतः जान लेता है, वह देह त्याग करने के उपरान्त फिर जन्म नहीं लेता अपितु मेरे दिव्य धाम को प्राप्त करता है।"

(श्रीमद्भगवद्गीता ४.९) । श्रीकृष्ण का अवतार जिस उद्देश्य से होता है, वह आगे और भी बताया गया है। जब श्रीकृष्ण किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए आते हैं, तो उन्हें कुछ विशेष कार्य भी करने पड़ते हैं। यद्यपि कतिपय दार्शनिक यह नहीं मानते कि भगवान् स्वयं अवतार के रूप में आते हैं। वे कहते हैं, इस निकृष्ट और पतित संसार में भगवान् क्यों आने लगे ? किन्तु श्रीमद्भगवद्गीता से हमें कुछ और ही पता चलता है। हमें यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि हम गीता को एक शास्त्र के रूप में पढ़ते हैं, अतः गीता में जो कुछ कहा गया है, उसे मानना ही चाहिए। अन्यथा गीता पढ़ने का कोई अर्थ नहीं। गीता में कृष्ण कहते हैं कि वे संसार में एक विशेष उद्देश्य से अवतरित हुए हैं और उसकी पूर्ति के लिए उन्हें कुछ विशेष कार्य करने पड़ते हैं उदाहरणार्थ हम देखते हैं कि कृष्ण अर्जुन के सारथी बनते हैं और कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में अनेक कार्यों में संलग्न होते हैं। जैसे कोई व्यक्ति या राष्ट्र किसी व्यक्ति या राष्ट्र के पक्ष का समर्थन करता है, उसी प्रकार यहाँ कृष्ण भी युद्ध-भूमि में अर्जुन के पक्ष का समर्थन करते हैं। वास्तव में श्रीकृष्ण किसी का पक्षपात् नहीं करते । हमें पक्षपात् दीखने वाली उनकी लीला को साधारण स्थूल दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

इस श्लोक में श्रीकृष्ण यह भी स्पष्ट करते हैं कि इस प्राकृत संसार में उनका अवतरण दिव्य है। दिव्य अर्थात् 'अलौकिक'। उनके कर्म किसी भी प्रकार से साधारण नहीं हैं। आज भी समस्त भारतवासी सम्प्रदाय के भेद के बिना भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को वैसे ही श्रीकृष्ण का जन्म-दिवस मनाते हैं, जैसे पाश्चात्य जगत् में क्रिसमस के दिन ईसा का जन्म दिवस मनाया जाता है। श्रीकृष्ण का जन्म-दिवस

'जन्माष्टमी' नाम से विश्व विदित है। इस श्लोक में श्रीकृष्ण 'अपने जन्म' की बात कहते हैं। जब 'जन्म' होता है, तो उसके साथ कर्म अनिवार्य हैं। किन्तु कृष्णके जन्भ और कर्म 'दिव्य' हैं। वे साधारण मनुष्यों के जन्म-कर्म के समान नहीं हैं। यहां कोई यह शंका प्रस्तुत कर सकता है कि श्रीकृष्ण के ही जन्म और कर्म दिव्य क्यों हैं ? वे भी साधारण मनुष्यों की भांति जन्म लेते हैं, युद्ध में अर्जुन का पक्षपात करते हैं। उनके 'वसुदेव' नामक पिता और 'देवकी' नामक माता है। इसमें दिव्यता क्या है ? किन्तु इस बात का रहस्य हमें ठीक प्रकार से समझ लेना चाहिए। श्रीकृष्ण ने **'एवं यो वेत्ति तत्त्वतः'** ऐसा कहकर उसी रहस्य को स्पष्ट किया है। अर्थात् कृष्ण के जन्म और कर्म तत्त्व से जानने की आवश्यकता है। जो व्यक्ति उसका वास्तविक रहस्य जान लेता है, उसी को यह फल मिलता है—**'त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।'** अर्थात् 'हे अर्जुन वह व्यक्ति देह त्याग करने के उपरान्त फिर जन्म नहीं ग्रहण करता वरन् मुझे ही प्राप्त करता है। वह जीवन्ममुक्त हो जाता है और अनादि अनन्त वैकुण्ठ जगत् में प्रविष्ट होकर अपने मूल सच्चिदानन्द-स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। ऐसा केवल तभी हो सकता है, जब हम श्रीकृष्ण के जन्म-कर्म को तत्त्व से समझ लें।

साधारणतया जब कोई व्यक्ति अपना देहत्याग कर देता है तो उसे तुरन्त दूसरा देह धारण करना पड़ता है। देहधारी जीव अपने कर्मों के अनुसार निरन्तर जन्म-मृत्यु के द्वारा एक देह से दूसरी देह धारण करके अपना वेष परिवर्तन करते रहते हैं। इस समय हम समझते हैं कि यह वर्तमान देह हमारा वास्तविक शरीर है, किन्तु सच्चाई यह है कि यह केवल एक 'वेष' मात्र है। वास्तव में हमारा एक ही शरीर है, और वह है हमारा आत्मिक शरीर। जीव का यह स्थूल भौतिक शरीर उस सूक्ष्म

आत्मिक शरीर के सामने तुच्छ है। जब यह भौतिक शरीर वृद्ध और जीर्ण-शीर्ण हो जाता है या किसी दुर्घटना के कारण अशक्त हो जाता है तो हम उस शरीर को एक मैले वस्त्र की भांति छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण कर लेते हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय।
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि'
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

"जैसे कोई पुराने वस्त्रों का त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी पुराने शरीरों को त्याग कर नये शरीरों में चला जाता है।" (गीता २.२२)

प्रारम्भ में जीव का शरीर एक चने जितना बड़ा होता है। फिर क्रमशः शिशु, बालक, किशोर, तरुण, प्रौढ़, वृद्ध होता हुआ अन्त में अशक्त और व्यर्थ होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। तब जीव दूसरा शरीर बदल देता है। अतः स्पष्ट है कि शरीर निरन्तर परिवर्तित होता ही रहता है और मृत्यु तो हमारे वर्त्तमान शरीर का अन्तिम परिवर्तन ही है।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

"जैसे देहधारी जीवात्मा को इस शरीर में कुमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था की प्राप्ति होती है, वैसे मृत्यु होने पर अन्य देह की प्राप्ति भी होती है। इस सम्बन्ध में तत्त्ववेत्ता आत्मज्ञानी पुरुष मोहित नहीं होता। (गीता २-१३)

शरीर के बदल जाने पर भी शरीर में रहने वाला जीव वही रहता है। यद्यपि बालक युवक हो जाता है तथापि उसके

शरीर में रहने वाला नहीं बदलता। यह नहीं कि वह जीव जो उस शरीर में बालक के रूप में था, कहीं चला जाता हो। चिकित्सा विज्ञान भी स्वीकार करता है कि हमारा यह भौतिक शरीर निरन्तर बदलता रहता है।

जैसे लोग इस परिवर्तन से चिन्तित नहीं होते, वैसे ही ज्ञानी पुरुष इस शरीर के अन्तिम परिवर्तन—अर्थात् मृत्यु के के समय भी उद्विग्न नहीं होते। परन्तु जो वस्तुस्थिति को यथार्थ रूप में नहीं समझता, वह शोकाकुल हो जाता है। भौतिक दशा में हम सदा देहान्तर करते रहते हैं, यही हमारी व्याधि है। ऐसा नहीं कि हम सदा मनुष्य शरीर धारण करते हों। अपने कर्मानुसार कभी हम पशु शरीर या देव गन्धर्व शरीर भी पा सकते हैं। पद्मपुराण के अनुसार ८४,००००० जीव योनियाँ हैं। मृत्यु के उपरान्त कर्मानुसार इनमें से कोई भी योनि प्राप्त हो सकती है। किन्तु श्रीकृष्ण आश्वासन देते हैं कि जो व्यक्ति उनके जन्म और कर्म के रहस्य को तत्त्वतः जानता है, वह जन्म-मृत्यु के इस चक्र से छूट जाता है।

श्रीकृष्ण के दिव्य जन्म और कर्म को कोई व्यक्ति तत्त्व से किस प्रकार समझ सकता है, इसका उपाय श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के १८वें अध्याय में बताया गया है।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

"मैं जितना और जो हूँ उसके तत्त्व को केवल भक्ति द्वारा ही जाना जा सकता है, और तत्त्त से जानने के उपरान्त वह मुझमें प्रवेश भी कर सकता है। (गीता १८.५५)

यहाँ फिर 'तत्त्वतः' शब्द प्रयुक्त हुआ है। श्रीकृष्ण के

तत्त्व को मनुष्य केवल भक्ति द्वारा समझ सकता है। जो भक्त नहीं है, जो कृष्णभावना प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील नहीं है, वह भगवत्-रहस्य नहीं समझ सकता। गीता के चौथे अध्याय के आरम्भ में भी (४.३) श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वे योग के प्राचीन विज्ञान को उसे इसलिए समझा रहे हैं कि वह उनका भक्त और मित्र है। जो व्यक्ति श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन केवल विद्वत्ता के लिए करता है, उसके लिए कृष्ण-तत्त्व एक रहस्य ही बना रहता है। श्रीमद् भगवद्गीता कोई ऐसी पुस्तक नहीं है, जिसे कोई पुस्तक भण्डार से मोल लेकर केवल अपनी विद्वत्ता पर समझ सके। अर्जुन न तो कोई उदभट विद्वान् था, न वेदान्ती, न दार्शनिक, न ब्राह्मण, न त्यागी, न वैरागी था बल्कि वह एक गृहस्थ और योद्धा सैनिक था। फिर भी कृष्ण ने उसे गीता का ज्ञान देने के लिए चुना और अपनी शिष्य-परम्परा में प्रथम स्थान दिया। ऐसा क्यों? इसलिए कि अर्जुन कृष्ण के अनन्य भक्त थे। भगवद्गीता कैसी है, श्रीकृष्ण कैसे हैं, उन्हें तत्त्व से समझने के लिए बस यही अनिवार्य योग्यता या पात्रता है कि मनुष्य कृष्ण-भक्त बन जाय।

यह कृष्णभावना क्या है? यह मन के दर्पण से दुष्प्रवृत्तियों की धूल को धोने की यह प्रक्रिया है।

'हरे कृष्ण. हरे कृष्ण, हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥'

महामन्त्र के कीर्तन से सम्पन्न होती है। इस मन्त्र के कीर्तन और श्रीमदभगवदगीता के श्रवण से हम धीरे-धीरे कृष्णभावना भावित हो सकते हैं, 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।' श्रीकृष्ण सदा हमारे हृदय में विराजमान हैं। इस शरीर-वृक्ष पर जीवात्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी बैठे हैं। जीवात्मा रूपी पक्षी इस वृक्ष के फलों को खा रहा है, और

परमात्मा रूपी पक्षी केवल साक्षी होकर स्थित है। जैसे ही जीवात्मा भक्ति की ओर अग्रसर होता है, वैसे ही अन्तःकरण में स्थित परमात्मा मन के दर्पण पर पड़ी धूल को साफ करने में उसकी सहायता करते हैं। श्रीकृष्ण साधू वृत्ति वाले सभी व्यक्तियों के मित्र हैं। वास्तव में कृष्णभावना को जाग्रत करना ही साधु-वृत्ति है। श्रवण और कीर्तन से श्रीकृष्ण के तत्त्व को जाना जा सकता है। ऐसा होने पर मृत्यु के बाद वह तुरन्त श्रीकृष्ण के बैकुण्ठ धाम को भी प्राप्त हो जाता है। इस बैकुण्ठ जगत् का वर्णन भगवद्गीता में इस प्रकार किया गया हैः

न तद् भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।

"मेरे उस परधाम को न तो सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा प्रकाशित कर सकता है और न अग्नि ही प्रकाशित करता है। जहाँ जाकर जीवात्मा फिर इस दुःखमय प्राकृत जगत में नहीं लौटता वही मेरा परमधाम है" (श्रीमद्भगवद्-गीता १५·६) "यह प्राकृत जगत् अन्धकारमय है, इसलिए हमें यहां सूर्य चन्द्रमा और विद्युत की आवश्यकता पड़ती है। वेदहमें इस तमोमय जगत् में न रहकर ज्योतिर्मय वैकुण्ठ-जगत् मेंचले जाने का आदेश देते हैं। 'तमस्' शब्द के दो अर्थ हैं- १-अन्धकार और २- अज्ञान।

परमात्मा में अनेक शक्तियाँ है। यह बात नहीं कि वे प्राकृत-जगत् में केवल कर्म करने के लिए आते हैं। वेदों में कहा गया है कि ईश्वर को कोई कर्म नहीं करना पड़ता है। भगवद्गीता से श्रीकृष्ण कहते हैः-

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।

"हे पृथापुत्र! अर्जुन ! तीनों लोकों में मुझे कुछ भी कर्त्त-

व्य कर्म नहीं हैं, और प्राप्त होने योग्य कोई वस्तु मुझे अप्राप्य भी नहीं है तब भी मैं कर्म करता हूँ। (श्रीमद्भगवद्गीता ३-२२) इसलिए हमें ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि श्रीकृष्ण इस प्राकृत-जगत् में अवतार लेने और ये सब कर्म करने के लिए वाध्य हैं। कोई भी व्यक्ति श्रीकृष्ण से अधिक या उनके समान नहीं है। श्रीकृष्ण में स्वाभाविक रूप से ही समस्त ज्ञान विद्यमान हैं। यह भी नहीं है कि ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हें तपस्या करनी पड़े या किसी समय किसी से ज्ञान प्राप्त करना हो। सभी देश-काल में वे ज्ञान से पूर्ण हैं। उन्होंने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया, पर स्वयं उन्हें कभी गीता नहीं सिखाई गयी। जो पुरुष श्रीकृष्ण के उस स्वरूप को समझ लेता है वह इस प्राकृत-जगत् के जन्म-मरण के चक्र में नहीं गिरता। माया के कारण हम लोग इस प्राकृत-जगत के वातावरण से अपने पूरे जीवन काल में समझौता करते ही रहते हैं किन्तु वास्तव में इस मानव जीवन का यह उद्देश्य नहीं है? इस जीवन का उद्देश्य कृष्ण के तत्त्व विज्ञान को समझना है। हमारी भौतिक आवश्यकतायें हैं:—भोजन, मैथुन, निद्रा, आत्मरक्षा और इन्द्रियों द्वारा विषय भोग करना। ये आवश्यकतायें मनुष्यों और पशुओं में समान है। पशु जगत् इन समस्याओं का समाधान करने में ही व्यस्त रहता है। यदि हम भी इन समस्याओं के समाधान करने में लगे रहें तो पशुओं में और हममें भेद ही क्या रहेगा? परन्तु मनुष्य में एक विशेष शक्ति भी है। वह दिव्य कृष्णभावना विकसित कर सकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह पशु कोटि में ही है। आधुनिक सभ्यता का यह एक महान् दोष है कि उसमें इन जीवन निर्वाह सम्बन्धी समस्याओं पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। सच्चिदानन्दमय आत्म-स्वरूप होने के कारण हमारा यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि

हम अपने को जन्म मरण के जाल से मुक्त करें। अतः हमें साव-धान रहना चाहिए कि मनुष्य जीवन का जो विशेष अवसर हमें मिला है, वह कहीं चूक न जाय। श्रीकृष्ण गीता का उपदेश देने स्वयं आते हैं, और भगवद्विश्वासी बनने में हमारी सहा-यता करते है। वास्तव में यह नाशवान् मनुष्य शरीर हमें इसी भगवद भावना को जगाने के लिये दिया गया है। यदि इस दुर्लभ मनुष्य शरीर और जीवन हम कृष्णभावना प्राप्त करने में नहीं लगाते तो इस दुर्लभ अवसर को खो देगे। कृष्णभावना को प्राप्त करने की प्रकिया बड़ी सरल हैं—**'श्रवणं कीर्तनम्'** भगवन्नाम का स्मरण और कीर्तन हमें भगवन्महिमा को सुनने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करना है। ध्यान से सुनने पर आत्म-ज्ञान की प्राप्ति निश्चय है।

श्रीकृष्ण अवश्य ही हमारी सहायता करेंगे, क्योंकि वे हमारे हृदय में विराजमान् हैं। हमें तो केवल थोडा समय निकाल कर प्रयत्न करना है। हमें किसी से यह पूछने की आव-श्यकता नहीं पड़ेगी कि हम प्रगति कर रहे है या नहीं। जैसे एक भूखे व्यक्ति को पेट भर भोजन करने पर तृप्ति अनुभव हो जाती है वैसे ही यह भी अपने आप ज्ञात हो जायगा।

कृष्णभावना अथवा आत्म-साक्षात्कार का यह मार्ग वस्तुतः कठिन नहीं है। श्रीकृष्ण ने गीता में इसे अर्जुन को सिखाया है, और यदि हम गीता को वैसे ही समझलें जैसे अर्जुन ने समझा था, तो हमें जीवन के लक्ष्य तक पहुँचने में कोई कठि-नाई नहीं होगी। परन्तु यदि हम भगवद्गीता की व्याख्या अपनी वैयक्तिक लौकिक विद्वत्ता के अनुसार करने लगे तो कुछ भी सार नहीं रहेगा।

जैसा पूर्व में कहा जा चुका है, हरेकृष्ण महामंत्र का कीर्तन ही वह उपाय है जिससे भौतिक संसर्गों के कारण चित्त

के दर्पण पर जमी दुष्प्रवृत्तियों की सारी धूल दूर हो जाती है। हमें कृष्णभावना जाग्रत करने के लिए बाह्य सहायता की आवश्यकता नहीं, क्योंकि कृष्णभावना हमारे हृदय में सुप्तावस्था में पहले से ही विद्यमान् है। वास्तविकता तो यह है कि कृष्णभावना ही हमारा यथार्थ स्वरूप लक्षण है।

हमें केवल इस प्रक्रिया से उसे उदभावित करना है। कृष्णभावना एक अनादि-अनन्त सत्य है। यह कोई मतवाद या किसी संस्था द्वारा ऊपर थोपे हुए विश्वासों का संकलन नहीं है। यह प्रत्येक प्राणी में विद्यमान् है, चाहे वह मनुष्य हो या पशु। लगभग ५०० वर्ष पूर्व जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत की यात्रा करते समय एक गहन वन में होकर निकलते हुए हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन कर रहे थे, तो बाघ, हाथी, मृग आदि सभी वन्य-पशु कृष्ण के पवित्र नाम के प्रभाव से उनके संकीर्तन नृत्य में सम्मिलित हो गये थे। किन्तु यह संकीर्तन की शुचिता पर अवलंबित है। जैसे-जैसे हम संकीर्तन में प्रगति करते हैं, वैसे-वैसे शुचिता आती जाती है।

३. सर्वत्र और सदा कृष्ण-दर्शन

हमारे व्यावहारिक जीवन में कृष्णभावना कैसे जाग्रत हो, इसकी शिक्षा श्रीकृष्ण ने हमें गीता में दी है। यह नहीं कि हमें अपना कर्त्तव्य कर्म छोड़ बैठना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कोई न कोई व्यवसाय होता है किन्तु प्रश्न यह है कि वह इस व्यवसाय को किस भावना से करता है? मनुष्य सोचता है। "अपने परिवार का पोषण करने के लिए मुझे एक व्यवसाय चाहिए।" हमें समाज प्रशासन अथवा परिवार को सन्तुष्टि करना होता है इसलिए इस भावना से कोई भी मुक्त नहीं है।

किसी भी कार्य को भली भांति करने के लिए मनुष्य में शुद्ध भावना का होना अनिवार्य है। वह व्यक्ति जिसकी भावना अशान्त और विक्षिप्त है कोई कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकता। हमें अपना कर्त्तव्य पालन समुचित रूप से और श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए करना चाहिये। यह नहीं कि हमें अपनी कार्य पद्धति बदलनी है, अपितु यह समझना है कि हम किस के लिए कार्य कर रहे हैं। हमें जो कार्य करना है, वह अवश्य करें पर सकाम भाव के वशीभूत न हों। संस्कृत का यह 'काम' शब्द लोलुपता इच्छा, आकांक्षा, और 'इद्रिय तुष्टि' का बोध कराता है। श्रीकृष्ण की शिक्षा है कि हमें कोई कार्य अपने 'काम' की तुष्टि के लिए नहीं करना चाहिये। श्रीमद्भगवद् गीता की सम्पूर्ण शिक्षा इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

अर्जुन अपनी इन्द्रियों की सन्तुष्टि के लिए अपने बन्धु-बान्धवों से युद्ध नहीं करना चाहता था, किन्तु श्रीकृष्ण ने सम-

झाया कि परमात्मा की तुष्टि के लिये उसे अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। भौतिक दृष्टि से यह विचार बड़ा पवित्र लगता है कि अर्जुन अपने राज्याधिकार को छोड़ कर अपने सम्बन्धियों की हत्या का परिहार कर रहा है। किन्तु श्री कृष्ण ने यह बात नहीं मानी क्योंकि अर्जुन का निर्णय अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने की इच्छा से प्रेरित था। मनुष्य को अपने कार्य या व्यवसाय को वदलने की आवश्यकता नहीं है, जैसे अर्जुन का व्यवसाय नहीं वदला। पर उसे अपनी भावना अवश्य ही वदलनी होगी। इसके लिए ज्ञान की आवश्यकता है। वह ज्ञान है यह जानना कि "मैं कृष्ण का भिन्न-अंश हूँ। उनकी परा शक्ति हूँ" यही वास्तविक ज्ञान है। सापेक्ष्य ज्ञान एक यंत्र की मरम्मत करनी ही सिखा सकता है किन्तु वास्तविक ज्ञान श्री कृष्ण के अंशभूत होने की स्थिति का अनुभव कराता है। हम श्रीकृष्ण के अंश हैं, इस कारण हमारा सुख भी अंश मात्र है, जो 'पूर्ण' पर अवलंवित हैं। उदाहरण के लिए हाथ जब तक शरीर से सम्वद्ध है और उसकी सेवा कर रहा हैं तव तक उसे सुख मिलेगा, जो दूसरे के शरीर की सेवा करने से उसे नहीं मिल सकता। हमकृष्ण के अंश हैं अतः कृष्ण की सेवा करने से ही हमें सुख हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है "तुम्हारी सेवा करके मैं सुखी नहीं हो सकता। मैं तो केवल अपनी सेवा करके सुखी हो सकता हूं। परन्तु कोई व्यक्ति नहीं जानता कि यह 'मैं' कौन है ? वह 'मैं' कृष्ण हैं।

ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

"इस जीवलोक (देह) में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है वही त्रिगुणात्मिका माया में स्थित मन सहित छह इन्द्रियों का आकर्षण करता है। (श्रीमद्भगवद्गीता १५-७)

जीवात्मा पूर्ण परमात्मा से माया के कारण पृथक हो गया है अतः यह आवश्यक है कि हम उस कृष्णभावना से अपने आप को पुनः सम्बद्ध करने का प्रयत्न करें जो हममें पहले से ही सुप्तावस्था में विद्यमान् है। श्रीकृष्ण को भूलकर हम कृत्रिम रूप से स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने का प्रयास कर रहे हैं पर ऐसा हम कर नहीं सकते।

जब जीव श्रीकृष्ण से विमुख होकर स्वतंत्र रहने का प्रयत्न करता है तो तुरन्त भौतिक प्रकृति के प्रभाव-क्षेत्र में आजाता है। जब कोई मनुष्य यह सोचता है कि वह श्रीकृष्ण से निरपेक्ष और स्वतंत्र है तो वह कृष्ण की माया-शक्ति के प्रभाव में आ जाता है, जैसे यदि कोई समझे कि वह सरकार या प्रशासन और उसके विधि-निषेधों से मुक्त है, तो वह पुलिस नियंत्रण और प्रभाव में आ जाता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होने का प्रयत्न कर रहा है। यही 'माया' है।

व्यक्तिगत रूपसे, साम्प्रदायिक रूप से, सामाजिक रूप से, राष्ट्रीय रूप से अथवा विश्वव्यापी रूप से भी स्वतंत्र होना संभव नहीं है। जब हम यह अनुभव करने लगेंगे कि हम स्व-स्व नहीं है तब हमें यथार्थ ज्ञान हो जायगा। आज अनेक लोग संसार में शान्ति के लिए संघर्ष कर रहे हैं किन्तु उन्हें शान्ति के सिद्धान्त का प्रयोग करना नहीं आता। संयुक्त राष्ट्र संघ अनेक वर्षों से शान्ति के लिए यत्न कर रहा है, किन्तु युद्ध अब भी हो रहे हैं—

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

"हे अर्जुन! समस्त प्राणियों का मूल बीज मैं ही हूँ। जगत् में चराचर ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका अस्तित्वमेरे विना हो"

(गीता—१०.३९)

इस प्रकार श्रीकृष्ण चराचर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं प्रत्येक वस्तु के भोक्ता और गृहीता हैं। अपने परिश्रम के फल का स्वामी हम अपने को समझ तो समझ सकते हैं, किन्तु यह एक भ्रम भाग है। हमको यह समझ लेना चाहिए कि श्रीकृष्ण ही हमारे सारे कर्म-फलों के स्वामी हैं। किसी कार्यालय में सैकड़ों आदमी काम करते हैं, पर वे जानते हैं कि व्यापार में जो कुछ लाभ होगा, वह सब स्वामी का होगा। जैसे बैंक का खजांची कर्मचारी यदि सोचने लगे, "ओह मेरे पास तो बहुत सा धन है, मैं इसका स्वामी हूँ, इसे मैं घर ले जाऊँ।" बस यहीं से उसके लिए विपत्ति का सूत्रपात हो जाता है। यदि हम सोचते हैं कि जो धन हमने एकत्र किया है, वह हम अपनी इन्द्रियों की तुष्टि के लिए उपयोग कर सकते हैं, तो समझना चाहिए हम सकाम भाव से कर्म कर रहे हैं। किन्तु यदि हम यह समझ लें कि हमारे पास जो कुछ है, वह सब श्रीकृष्ण का है तो मुक्ति हो जायेगी। वह धन चाहे हमारे हाथ में हो, पर अपने को उसका स्वामी समझते ही हम माया के वशवर्ती हो जाते हैं। जो मनुष्य इस भाव में स्थित है कि सब पदार्थ श्री कृष्ण के हैं, वही यथार्थ पंडित है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

"इस ब्रह्माण्ड में जड़-चेतन जो कुछ है उस सब पर परमात्मा का अधिकार है और सब में उसका निवास है। मनुष्य को वही वस्तु ग्रहण करनी चाहिए जो ईश्वर ने उसकी आवश्यकता के अनुसार उसे दी है। उसे किसी अन्य के धन पर लोलुप दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। (श्रीईशोपनिषद्-मंत्र-१)

"**ईशावस्यम् इदम्**"—'प्रत्येक वस्तु कृष्ण की है' यह भावना

फिर से जागृत करनी चाहिए। केवल व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं, अपितु राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय और अखिल ब्रह्माण्ड के स्तर पर भी इस भावना का प्रसार होना चाहिए। तभी स्थायी शान्ति होगी। हम प्रायः उदारता और अन्य लोगो का आदर करते हुए कार्य करने का सिद्धान्त मानते हैं, अपने परिवार, अपने देश वासियों और अन्य देश वासियों के साथ मैत्रीभाव रखने के लिए प्रयत्न करते हैं, किन्तु हमारा यह व्यवहार एक मिथ्या मनोकल्पना पर आधारित है। हमारे वास्तविक मित्र केवल श्रीकृष्ण ही हैं। यदि हम अपने परिवार, राष्ट्र या समस्त विश्व को लाभ पहुंचाना चाहते हैं तो हमें कृष्ण भावनाभावित कार्य ही करना चाहिए। यदि हम अपने परिवार का कुशल चाहते हैं तो उसके प्रत्येक सदस्य को कृष्ण परायण बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। संसार में सभी अपने परिवार को लाभ पहुंचाने का प्रयत्न कर रहें हैं, किन्तु दुर्भाग्य से वे सफल नहीं हो पाते। वे नहीं जानते कि वास्तविक समस्या क्या है? श्रीमद्भागवतपुराण कहता है कि मनुष्य को तब तक माता, पिता या गुरु बनने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए जब तक कि वह अपनी सन्तान को मृत्यु रूप भौतिक जगत् के बन्धन से छुटाने की क्षमता न रखता हो। पिता को कृष्ण-तत्त्व का ज्ञान होना चाहिए और उसे दृढ़ता से प्रयत्न करना चाहिए कि जो निष्पाप बालक उसे सौंपे गये हैं, वे फिर जन्म मृत्यु के चक्र में न पड़े। उसे दृढ़ निश्चय पूर्वक अपने बच्चों को ऐसी ही शिक्षा देनी चाहिए कि वे जन्म-मृत्यु के दुःखमय चक्र में कभी फँसे ही नहीं। किन्तु ऐसा करने के लिए पहले उसे स्वयं दक्षता प्राप्त करनी होगी। यदि वह ऐसी द्रक्षता प्राप्त कर लेता है, तो अपने बच्चों की ही सहायता नहीं करता अपितु अपने समाज और राष्ट्र की भी सहायता करता है। किन्तु यदि वह स्वयं ही अज्ञान से

बँधा हुआ है तो दूसरे अज्ञानबद्ध व्यक्तियों को कैसे मुक्त करा सकता है। दूसरे को मुक्त कराने से पूर्व यह आवश्यक है कि पहले स्वयं को मुक्त करे। वास्तव में कोई भी व्यक्ति मुक्त नहीं है प्रत्येक व्यक्ति भौतिक प्रकृति के आधीन है। परन्तु जो श्रीकृष्ण की शरण में आ गया है, उसे माया नहीं छू सकती। समस्त मनुष्यों में वही मुक्त है। यदि कोई व्यक्ति सूर्य के प्रकाश में खड़ा है, तो उसके पास अन्धकार का प्रश्न कहां उठता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति कृत्रिम प्रकाश में है, तो वह प्रकाश टिमटिमा कर बुझ भी सकता है। श्रीकृष्ण सूर्य के समान हैं। जहाँ वे विद्यमान रहते हैं, वहां अन्धकार और अज्ञान का प्रश्न ही नहीं उठता। बुद्धिमान लोग इस बात को समझते हैं।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥

"वासुदेव रूप से मैं ही समस्त चराचर जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ। यह सारा प्रपंच मेरे द्वारा ही प्रेरित होता है। तत्त्वतः ऐसा समझ कर बुद्धिमान लोग भक्ति भाव से मुझे भजते हैं।" (श्रीमद्भगवद्गीता १०.८)

इस श्लोक में 'बुध' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ बुद्धिमान विद्वान् या पंडित है। उसका लक्षण क्या है? वह जानता है कि श्रीकृष्ण इस सम्पूर्ण सृष्टि के उद्गम हैं। वह समझता है कि जो कुछ भी दीखता है वह श्रीकृष्ण से उत्पन्न हुआ है। इस प्राकृत-जगत् में 'काम' एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। सभी जीवों में कामभाव पाया जाता है। प्रश्न हो सकता है कि यह काम भाव वस्तुतः कहाँ से आता है। बुद्धिमान मनुष्य समझता है कि यह काम श्रीकृष्ण में है और यह व्रज गोपिकाओं के साथ उनके सम्बन्धों में प्रकट होता है। इस प्राकृत-

जगत् में जो कुछ पाया जाता है, वह श्रीकृष्ण में भी परिपूर्ण रूप में पाया जाता है। अन्तर यह है कि इस प्राकृत जगत् में प्रत्येक वस्तु विकृत रूप में दिखाई देती है। श्रीकृष्ण में ये सारी प्रवृत्तियाँ और भाव अपने शुद्ध आध्यात्मिक रूप में पाये जाते हैं जो इस बात को तत्त्वत: जानता है, वह श्रीकृष्ण का सच्चा भक्त बन जाता है—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।
सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्य युक्ता उपासते ।।

'हे पृथापुत्र अर्जुन ! जन्म-जन्म में अर्जित पुण्य से शुद्ध चित्त हुए महात्मागण सात्विकी-शम, दम, श्रद्धा, दया आदि लक्षणों से युक्त वृत्ति से मुझे जगत् का आदिकारण समझते हुए, एकाग्र चित्त से मेरा भजन करते हैं। ये महात्मागण भक्त पूर्वक सदा मेरा नाम-कीर्तन करते हुए मुझ से नित्ययुक्त हुए मेरी उपासना करते हैं। (श्रीमद्भगवद् गीता-९.१३, १४)

महात्मा कौन है ? महात्मा वह है जो भगवान् की पराशक्ति के आश्रित हैं। इस समय हम तो श्रीकृष्ण की माया शक्ति के आधीन हैं। जीव दशा में होने के कारण हमारी स्थिति तटस्थ जैसी है। हम अपने को इन दोनों में से किसी शक्ति की ओर स्थानान्तरित कर सकते हैं।

श्रीकृष्ण पूर्णतया मुक्त हैं, और उनके अंश होने के कारण हम में भी मुक्ति का यह गुण विद्यमान है। इसलिए हम चुन सकते हैं कि हमें किस शक्ति के आधीन रहना है। हम भगवान् की शक्ति को नहीं जानते, अत: उनकी माया शक्ति के आधीन रहने के अतिरिक्त हमारे पास कोई चारा नहीं है।

कुछ दर्शनों की स्थापना है कि हम जिस प्रकृतिका अनुभव इस समय कर रहे हैं, उसके अतिरिक्तऔर कोई प्रकृति नहीं है, और इससे मुक्त होने का एक मात्र उपाय है इस प्रकृति को निष्फल करके शून्यवत् रिक्त हो जाना। किन्तु हम शून्य-वत् रिक्त नहीं हो सकते, क्योंकि हम देह धारी जीव हैं। हम अपना शरीर परिवर्तन करते हैं; इसका अर्थ यह नहीं कि हम समाप्त हो गये। जड़ प्रकृति के प्रभाव से मुक्त होने से पूर्व हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारा वास्तविक स्थान कहाँ है और हमें जाना कहाँ है। यदि हमें यही मालूम नहीं कि हमें जाना कहाँ है तो हम यही कहेंगे, "हाय हम नहीं जानते कि उत्तम क्या है और अधम क्या है। हम जो कुछ जानते हैं वह यही है जहां हम हैं। अतः हमें यहीं रहने दो और सड़ने दो।" किन्तु श्रीमद्‌भगवद्‌गीता हमें अंतरंगा शक्ति और परा प्रकृति के विषय में बताती है। श्रीकृष्ण जो कुछ कहते हैं, वह त्रिकाला बाधित सत्य है। उसमें परिवर्तन नहीं होता। हमारा वर्तमान व्यवसाय क्या है और अर्जुन का व्यवसाय क्या था इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमें केवल अपनी भावना में अन्तर लाना है। इस समय हम केवल स्वार्थ भावना से प्रेरित है किन्तु हम यह नहीं जानते कि हमारा वास्तविक स्वार्थ क्या हैं। सचाई यह है कि हममें 'स्वार्थ' नहीं 'इन्द्रियार्थ' है। हम जो कुछ कर रहे हैं, इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए कर रहे हैं। यही भावना है, जो बदलनी चाहिए। इसके स्थान पर हमें अपने सच्चे स्वार्थ-कृष्ण भावना को स्थापना करनी चाहिए।

यह कैसे हो सकता है? अपने जीवन के पद पर हमारा कृष्ण भावना से युक्त रहना कैसे संभव हो सकता है? वास्तव में इसे श्रीकृष्ण ने हमारे लिए बहुत सरल बना दिया है:

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥

"हे अर्जुन जल में रस मैं हूँ। चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश मैं हूं समस्त वेदों में ऊँकार ध्वनि मैं हूं। आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व भी मैं ही हूँ।"

इस श्लोक में श्रीकृष्ण बताते हैं कि हम अपने जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में कृष्णभावना से युक्त कैसे हो सकते हैं। सभी प्राणी जल पीते हैं। जल का स्वाद इतना उत्तम होता है कि जब हम प्यासे होते हैं, तो संसार की कोई वस्तु वह तृप्ति नहीं प्रदान कर सकती जो पानी करता है। कोई भी शिल्पी शुद्ध जल व स्वाद जैसी वस्तु का निर्माण नहीं कर सकता। इस प्रकार जब हम पानी पीते हैं तो श्रीकृष्ण का स्मरण कर सकते हैं। अपने जीवन की रक्षा के लिए प्रतिदिन पानी पीने से कोई मना नहीं कर सकता है। अतः कृष्ण या कृष्णभावना तो प्रतिक्षण विद्यमान् है—इसे हम भुला ही कैसे सकते हैं? इसी प्रकार जब कहीं प्रकाश होता है वह भी श्रीकृष्ण ही हैं। परव्योम में ब्रह्मज्योतिः मूलभूत तेज स्वरूप श्रीकृष्ण के दिव्य देह से ही निःसृत होता है। यह भौतिक आकाश आच्छादित है। प्राकृत जगत् का मूल-भूत स्वभाव अन्धकार है, जिसका अनुभव हम रात्रि को करते हैं। यह जगत् सूर्य, चन्द्रमा पर सूर्य के प्रतिबिम्बित प्रकाश और विद्युत द्वारा कृत्रिम रूप से प्रकाशित हो रहा है। यह प्रकाश कहां से आ रहा है? सूर्य ब्रह्मज्योति या भगवद्धाम से प्रकाशित हो रहा है। भगवद्धाम में सूर्य, चन्द्रमा विद्युत की कोई आवश्यकता नहीं है। वहाँ तो प्रत्येक वस्तु ब्रह्मज्योति से प्रकाशमान है। इस पृथ्वी पर हम जब भी सूर्य का प्रकाश देखें तब श्रीकृष्ण का स्मरण कर सकते हैं।

जब हम वेदमन्त्रोचारण करते हैं, जो ओ३म् से प्रारम्भ होते हैं तब भी हम श्री कृष्ण का स्मरण कर सकते हैं। 'हरे कृष्ण'

के समान ओ३म् भी ईश्वर के लिए एक सम्बोधन है और ओ३म् भी कृष्ण है। 'शब्द' का अर्थ है नाद या ध्वनि, और जब कभी हम कोई शब्द ध्वनि या नाद सुनें, हमें समझना चाहिए कि यह उसी मूल भूत दिव्य शब्द ओ३म् या 'हरे कृष्ण' की प्रतिध्वनि है इस प्राकृत-जगत् में जो भी शब्द या ध्वनि हम सुनते हैं वह सब केवल उसी मूलभूत दिव्य नाद ओ३म् की प्रतिध्वनि है। इस प्रकार जब हम शब्द सुनें, पानी पीयें, प्रकाश देखें तो प्रभु का स्मरण कर सकते हैं। यदि हम ऐसा कर सकें तो वह कौन सा क्षण होगा, जब हम प्रभु को भूल सकें ? कृष्ण भावना प्राप्त करने की यही प्रक्रिया है। इस प्रकार हम चौबीस घण्टे श्री कृष्ण का स्मरण कर सकते हैं, जिससे श्रीकृष्ण सदा हमारे साथ रहेंगे। वास्तव में तो श्रीकृष्ण सदा ही हमारे साथ हैं, किन्तु ज्यों ही हम स्मरण करते हैं, श्रीकृष्ण की उपस्थिति प्रत्यक्ष होने लगती है।

श्री भगवान की प्राप्ति के नौ उपाय है जिन्हें नवधा-भक्ति कहते हैं। इनमें प्रथम है 'श्रवण'-सुनना। श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने से हम श्रीकृष्ण के वचन सुनते हैं, जिसका तात्पर्य है कि हम भगवान कृष्ण से सीधे सम्बद्ध हो जाते हैं। (हमें यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि जब हम श्रीकृष्ण के विषय में कुछ कहते हैं तब हमारा अभिप्राय भगवान् से होता है।) जितना ही हम अपने आपको श्रीकृष्ण से सम्बद्ध करके उनके शब्दों और नामों को सुनते हैं, उतना ही भौतिक प्रकृतिजन्य कल्मष घुल जाता है। जब यह समझ में आने लगता है कि श्री कृष्ण ही शब्द, प्रकाश, जल और अनेक पदार्थ हैं, तब कृष्ण से विमुख होना असम्भव हो जाएगा। यदि हम श्रीकृष्ण को इस प्रकार स्मरण करें तो उनसे हमारा सम्बन्ध स्थायी हो जायगा।

श्रीकृष्ण से सम्बन्ध होना सूर्य से सम्बन्ध होने के समान

है। जहां सूर्य का प्रकाश होता है, वहाँ कोई संक्रामक रोग नहीं रहता। जब तक कोई सूय की किरणों में रहेगा, उसे कोई व्याधि नहीं लगेगी। पाश्चात्य चिकित्सा में सूर्य का प्रकाश सब प्रकार के रोगों के उपचार में उपयोगी बताया गया है। वेदों के अनुसार तो रोगी को आरोग्य के लिए सूर्य की उपासना करनी चाहिए। इसी प्रकार यदि हम श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लें तो हमारे भव रोग समाप्त हो जायें। 'हरे कृष्ण' कीर्तन से हम श्रीकृष्ण से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं 'जल, सूर्य, चन्द्र को कृष्ण के रूप में देख सकते हैं, शब्द में उन्हें सुन सकते हैं, और जल में उनका स्वाद ले सकते हैं'। दुर्भाग्य से अपनी वर्तमान स्थिति में हम श्री कृष्ण को भूल बैठे हैं। पर अब श्रीकृष्ण का स्मरण करके अपने आध्यात्मिक जीवन को हमें पुनः जाग्रत करना है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने श्रवण और कीर्तन भक्ति का अनुमोदन किया था। अपने परम मित्र महाभागवत रामानन्दराय से श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने स्वरूप-साक्षात्कार के सम्बन्ध में जब वार्तालाप किया तो उन्होंने वर्णाश्रम धर्म और संसार की चर्चा की, किन्तु श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने कहा कि ये इतने श्रेष्ठ साधन नहीं हैं। श्री रामानन्द साधन बताते और श्रीचैतन्य महाप्रभु उसको अमान्य कर देते और आत्मोन्नति के लिए पुन कोई श्रेष्ठ साधन पूछते। अन्त में श्री रामानन्द ने एक वैदिक मंत्र का उदाहरण दिया, जिसमें बताया गया है कि ईश्वर को समझने के लिए मनुष्य को सब अन्य मानसिक विचार और तर्क-वितर्क छोड़ देना चाहिए, क्योंकि तर्क-वितर्क से किसी अन्तिम तत्त्व पर नहीं पहुंचा जा सकता। उदाहरण के लिए वैज्ञानिक लोग दूर स्थित नाना प्रकार के नक्षत्रों के विषय में अनुमान कर सकते हैं, किन्तु अनुभव के विना किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते। कोई व्यक्ति, जीवन भर अनुमान लगाते

और तर्क-वितर्क करते रहने पर भी किसी निष्कर्ष पर पहुंच ही जाएगा, यह आवश्यक नहीं।

ईश्वर के विषय में तर्क-वितर्क करना और अनुमान लगाना विशेष रूप से निरर्थक है। इसलिए श्रीमद्भागवत का मत है कि ईश्वर के सम्बन्ध में सब प्रकार के तर्क और अनुमान करना छोड़ देना चाहिए। इसके स्थान पर यह बताया गया है कि मनुष्य को निरभिमान और विनम्र होकर यह सोचना चाहिए कि वह न केवल एक क्षुद्र प्राणी है, अपितु इस विशाल ब्रह्माण्ड में पृथ्वी भी एक बिन्दु मात्र है। न्यूयार्क नगर बहुत बड़ा दिखाई पड़ सकता है। किन्तु जब एक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि स्वयं पृथ्वी भी इतना सूक्ष्म बिन्दु है, उसमें न्यूयार्क एक छोटा सा स्थान है। और उसमें एक व्यक्ति लाखों में से एक क्षुद्रातिक्षुद्र है, तो वह भली भांति समझ सकता है कि वह अन्ततः उतना महत्व पूर्ण तो रही है। विश्व ब्रह्माण्ड और ईश्वर के अनुपात में अपनी क्षुद्रता का अनुभव करते हुए हमें कृत्रिम अभिमान से फूलना नहीं चाहिए अपितु निरभिमान और विनम्र रहना चाहिए। इस बात की सावधानी भी रखनी चाहिए कि हम मुण्डक-दार्शनिकता' के शिकार न बन जाएँ।

किसी कुएँ में एक मेंढक था। उसके किसी मित्र ने उससे अतलान्त महासागर की चर्चा की। उसने मित्र से पूछा 'यह अतलान्त महासागर क्या है? मित्र ने बताया—'यह जल का भण्डार है। "कितना बड़ा? क्या इस कुएँ से दूना बड़ा?" "अरे नहीं इससे बहुत-बहुत बड़ा" मित्र ने उत्तर दिया। "कितना बड़ा? क्या इस कुयें से दस गुना बड़ा?" इस प्रकार मेंढक गणना करता रहा। किन्तु क्या मेंढक के लिये महासागर की गहराई और विस्तार का अनुभव संभव है? हमारी शक्तियां अनुभव और चिन्तन की सामर्थ्य सदा सीमित हैं। हम तो

मेंढक जैसी दार्शनिकता को ही जल दे सकते हैं। इसलिये श्रीमद्भागवत स्पष्ट कहती है कि भगवत्-तत्त्व को समझने के लिये तर्क और अनुमान को सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये क्योंकि यह केवल समय नष्ट करता है।

तर्क-वितर्क छोड़कर हमें क्या करना चाहिये ? श्रीमद्-भावगत कहती है कि हमें विनम्र होकर भगवत्-कथा सुननी चाहिये। यह कथा श्रीमद्भगवद् गीता, वैदिक साहित्य, बाइविल, कुरान आदि किसी भी प्रामाणिक शास्त्र में मिल सकती है। या किसी तत्वज्ञानी पुरुष से प्राप्त हो सकती है। सार यह है कि मनुष्य को तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिये। भगवान के विषय में महापुरुषों से और शास्त्रों से सुनना चाहिये। इस श्रवण का फल क्या होगा ? कोई कुछ भी हो—धनी, निर्धन, अमेरिकन, यूरोपियन, भारतीय, ब्राह्मण शूद्र या और कुछ यदि वह केवल प्रभु की दिव्य वाणी सुने। भगवान् को किसी भी शक्ति से नहीं जीता जा सकता, केवल प्रेम से जीता जा सकता है। अर्जुन श्रीकृष्ण के मित्र थे, इस लिये श्रीकृष्ण परब्रह्म परमेश्वर होते हुये भी अर्जुन के लिये एक तुच्छ सेवक रथ सारथी बन गये। अर्जुन श्रीकृष्ण से प्रेम करते थे। और श्रीकृष्ण ने भी इस प्रकार उनके प्रेम का प्रति दान दिया। ऐसे हीं श्रीकृष्ण जब बालक थे, खेल-खेल में अपने पिता, नन्द महाराज के जूते उठाकर अपने सिर पर रख लेते थे। कुछ लोग भगवान के साथ एक हो जाने के लिये अथक प्रयत्न करते हैं, किन्तु हम तो इस स्थिति का भी वस्तुत अतिक्रमण कर सकते हैं। यह ठीक है कि भगवान् ही सब जीवों के पिता हैं, उनका कोई पिता नहीं है और न हो सकता है, किन्तु वे भी अपने भक्त, अपने प्रेमी को पिता के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। प्रेमवश तो श्रीकृष्ण अपने भक्त से पराजित होना भी स्वीकार कर लेते हैं। बस मनुष्य को तो

केवल इतना ही करना है कि भगवत्-कथा को बहुत ध्यान से सुने।

श्रीमद्‌भगवदगीता के सत्रहवें अध्याय में श्रीकृष्ण वे अन्य उपाय बताते हैं, जिनके द्वारा हमें जीवन के पद-पद पर उनकी अनुभूति हो सकती है ;

पुण्योगंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥

मैं पृथ्वी में पवित्र गन्ध अर्थात् कारण रूप तन्मात्रा हूँ। अग्नि में उसका तेज हूं। समस्त भूत प्राणियों में उनका जीवन हूं। और तपस्वियों में मैं ही तप हूं।" (गीता ७-९)

'पुण्योगंधः' शब्द से तात्पर्य है 'मूलभूत सुगंध'। पदार्थों में स्वाद और सुगंध केवल श्री कृष्ण ही उत्पन्न कर सकते हैं। हम लोग मिश्रण द्वारा कुछ सुगंधित द्रव्य, इत्र आदि बना तो लेते हैं किन्तु यह इतने उत्तम नहीं होते जितनी कि प्रकृति में स्वयं उत्पन्न मूलभूत सुगन्ध। जब हम किसी प्राकृतिक सुगंध का अघ्राण करें, तो सोचें "ओह इसमें प्रभु का निवास है। इसमें श्रीकृष्ण हैं।" अथवा जब हम कोई प्राकृतिक सौन्दर्य देखें, हम सोच सकते हैं, "ओह ! यहां श्री कृष्ण हैं।" अथवा जब हम कोई असाधारण शक्ति सम्पन्न या आश्चर्यजनक व्यक्ति या वस्तु देखते हैं तो कह सकते हैं, "यहां श्रीकृष्ण हैं।" अथवा जब हम जीवन की कोई योनि देखते हैं, चाहे वह वृक्ष हो, पौधा हो, पशु हो या मानव प्राणी हो तो हमें तुरन्त समझ लेना चाहिये कि यह जीवन श्रीकृष्ण का ही एक अंश है, क्योंकि ज्यों ही, उस शरीर में चैतन्य की किरण जो श्रीकृष्ण का अंश है, निकल जाती है त्यों ही शरीर छिन्न-भिन्न होने लगता है।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥

"हे अर्जुन, यह जान ले कि सम्पूर्ण प्राणियों का मूल बीज मैं हूं, बुद्धिशाली व्यक्तियों की बुद्धि, और तेजस्वियों का तेज भी मैं ही हूं।" (श्रीमद्भगवद्गीता-७-१०)

यहां स्पष्ट कहा गया है कि श्रीकृष्ण सभी प्राणियों के जीवन-प्राण हैं। इस प्रकार हम पद-पद पर भगवान् के दर्शन कर सकते हैं। लोग पूछ सकते हैं कि क्या आप हमें भगान् के दर्शन करा सकते हैं? हां, अवश्य भगवान् के दर्शन कई प्रकार से हो सकते हैं। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी आँखें ही बंद कर ले और कहे कि "मैं भगवान् को देखूंगा ही नहीं", तो उसे कैसे दिखाया जा सकता है?

उपर्युक्त श्लोक में "बीजं" शब्द के साथ 'सनातनम' विशेषण आया है। हम यह संसार रूप विशाल वृक्ष देखते हैं, किन्तु इस वृक्ष का मूल उद्गम क्या है? वह यही 'सनातन' बीज है। प्रत्येक प्राणी में जीवन का बीज विद्यमान् है। शरीर अनेक परिवर्तनों को भोगता है—माता के गर्भ में विकसित होता है, एक छोटे शिशु के रूप में बाहर आता है, बालक और तरुण होता है, किन्तु जीवन का जो बीज उसके भीतर है, वह स्थायी है। इसीलिए उसे 'सनातन' कहा गया। अगोचर रूप से हमारा शरीर प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है। किन्तु 'बीज'-'आत्मतत्त्व' कभी नहीं बदलता। श्रीकृष्ण ही बुद्धिमान व्यक्ति में बुद्धि रूप से स्थित हैं। श्रीकृष्ण की कृपा के बिना कोई भी व्यक्ति असाधारणरूप से बुद्धिमान नहीं हो सकता। प्रत्येक व्य।क्त एक दूसरे से अधिक बुद्धिमान् होने का प्रयत्न कर रहा है, किन्तु श्रीकृष्ण को कृपा के बिना यह संभव नहीं है। अतः जब भी हमें कोई असाधारण बुद्धिमान व्यक्ति मिले तो समझना चाहिए कि "उसमें यह असाधारण बुद्धि श्रीकृष्ण ही हैं। इसी प्रकार अत्यन्त प्रभावशाली पुरुष में जो 'प्रभाव दिखाई देता है, वह भी श्रीकृष्ण ही हैं।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।।

"हे भरत श्रेष्ठ अर्जुन ! मैं बलवान् पुरुषों में आसक्ति और कामना से रहित बल हूँ। सम्पूर्ण प्राणियों में धर्म के अनुकूल काम भी मैं ही हूँ ।" (श्रीमद्भगवद्गीता ६.११)

हाथी और वनमानुष बड़े बलवान् पशु हैं, हमें समझ लेना चाहिये कि इनकी शक्ति का स्रोत भी श्रीकृष्ण है। कोई भी मनुष्य अपने प्रयत्न से ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। किन्तु यदि श्रीकृष्ण की कृपा हो जाय तो एक मनुष्य हाथी से सहस्र गुणा शक्ति प्राप्त कर सकता है। कहा जाता है कि महान् योद्धा भीम, जो कुरुक्षेत्र युद्ध में लड़े थे, दस हजार हाथियों का बल रखते थे। इसी प्रकार मनुष्य में जो काम भाव है, यदि वह धर्मानुकूल हैं, तो उसे भी श्रीकृष्ण समझना चाहिए। धर्मानुकूल काम का तात्पर्य सत् सन्तान प्राप्त करने के लिए किए गए मैथुन से है। यदि कोई पुरुष कृष्ण भावनाभावित अच्छी सन्तति को जन्म दे सके तो अनेक बार सम्भोग करना भी धर्मानुकूल हैं, यदि उसे कुत्तें-बिल्लियों की सी मनोवृत्ति वाली सन्तान प्राप्त होती है तो उसकी काम-वासना धर्म के प्रतिकूल समझनी चाहिए। धार्मिक और सभ्य समाज में विवाह का उद्देश्य यह है कि स्त्री-पुरुष सत् सन्तान प्राप्त कर सकें। इसलिए विवाहित जीवन में काम-सेवन धार्मिक और अविवाहित जीवन में काम-सेवन अधार्मिक माना जाता है। वास्तव में यदि गृहस्थाश्रम का काममय जीवन धर्मानुकूल हो, तो गृहस्थ और सन्यासी में कोई अन्तर नहीं समझना चाहिए।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान् विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ।।

सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण से उत्पन्न होने वाले

सम्पूर्ण भाव मुझसे ही होते हैं, ऐसा समझना चाहिए। किन्तु वस्तुतः न उनमें मैं हूँ और न वे मुझमें हैं। मैं सर्व तंत्र स्वतंत्र हूँ। (श्रीमद्भगवद्गीता ७.१२)

कोई श्रीकृष्ण से प्रश्न कर सकता है "आप कहते हैं, 'मैं शब्द, जल, प्रकाश, सुगंध सबका बीज, बल काम आदि हूँ, तो क्या इसका तात्पर्य है कि आप केवल सत्त्वगुण में ही विद्यमान् रहते हैं ?" इस प्राकृत जगत् में तो सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण तीनों हैं। अभी तक श्रीकृष्ण ने अपने आपको सत्त्वगुण से उत्पन्न भावों में व्यक्त किया है (उदाहरणार्थ विवाहोपरान्त धर्मानुकुल काम में) किन्तु अन्य दो गुणों राजस और तामस के विषय में क्या स्थिति है ? क्या श्रीकृष्ण उनमें स्थित नहीं हैं ? इसके उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि इस प्राकृत जगत् में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह प्रकृति के इन्ही तीनों गुणों के सम्मिश्रण का परिणाम है। यहां जो कुछ भी अनुभव किया जा सकता है, वह सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण का ही समुच्चय है। तथा श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं, "सभी स्थितियों में इन तीन गुणों का कर्त्ता मैं हूँ।" श्रीकृष्ण इन तीनों गुणों के कर्त्ता हैं, इसलिए इन गुणों की स्थिति श्रीकृष्ण में है, श्रीकृष्ण उनमें स्थित नहीं है। श्रीकृष्ण त्रिगुणातीत हैं। इस प्रकार दूसरे अर्थ में तामसी असद् वृत्ति या पदार्थ भी जब कृष्ण भावना में प्रयुक्त होते हैं तो कृष्ण रूप ही हो जाते हैं। यह कैसे ? उदाहरणार्थ एक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर बिजली निर्माण करता है। अपने घरों में हमें इस विद्युत्-शक्ति का अनुभव फ्रिजयंत्र में ठण्डक के रूप में और बिजली के चूल्हे में गर्मी के रूप में होता है, किन्तु ऊर्जा के प्लाण्ट में विद्युत् शक्ति न ठण्डी है न गरम। अन्य प्राणियों के इस शक्ति की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से हो सकती है किन्तु श्रीकृष्ण के लिए वह भिन्न नहीं नहीं है। इसीलिए हमें कभी कभी

लगताहै कि श्रीकृष्ण रजोगुण और तमोगुण में लिप्त होकर कार्य कररहे हैं, किन्तु श्रीकृष्ण के लिए वह अपने अतिरिक्त कुछ नहीं होता। जैसे कि विद्यु त् अभियन्ता के लिए विद्युत् शक्ति केवल विद्यु त् शक्ति है और कुछ नहीं, वह इस प्रकार का भेद नहीं करता कि "यह ठंडी बिजली है, और वह गरम बिजली है।"

प्रत्येक पदार्थ की उत्पत्ति श्रीकृष्ण से है। वास्तव में वेदान्तसूत्र घोषणा करता है—"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा जन्माद्यस्य यतः।" प्रत्येक भाव का उद्भव परब्रह्म से है। जीव जिसे अच्छा या बुरा मानते हैं, वह उनके जीवत्व की उपाधि के कारण है, किन्तु कृष्ण निरुपाधि हैं, अतः उनके लिए अच्छे बुरे का प्रश्न ही नहीं उठता। हम जीव भाव से युक्त हैं, अतः भेद भावना से ग्रस्त हैं, पर कृष्ण के लिए सब कुछ परिपूर्ण है।

४. मूढ़ और ज्ञानी के मार्ग

कृष्ण इस प्रकार हमें वता रहे हैं कि वे क्या हैं, किन्तु हम फिर भी उनकी ओर आकृष्ट नहीं होते। ऐसा क्यों ? इसका कारण श्रीकृष्ण स्वयं वताते हैं :

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

"मेरी यह त्रिगुणात्मिका दैवी माया शक्ति वड़ी दुर्लंघ्य है किन्तु जो सर्वतोभाव से मेरी शरण हो गये हैं, वे इस माया को तर जाते हैं। (श्रीमद्भगवद्गीता ७.१४)

यह भौतिक जगत् प्रकृति के तीन गुणों से युक्त हैं। प्रत्येक प्राणी इन गुणों के अधीन है। जब वे प्रधानतया सतोगुण के अधीन होते हैं तो ब्राह्मण कहलाते हैं। यदि वे रजोगुण प्रधान होते हैं तो क्षत्रिय कहलाते हैं, यदि वे रजोगुण और तमोगुण प्रधान होते हैं तो वैश्य कहलाते हैं । और यदि वे केवल तमोगुण प्रधान होते हैं, तो वे शूद्र कहलाते हैं। यह केवल जन्म और सामाजिक स्थिति के कारण कृत्रिम आरोप नहीं हैं, अपितु उस गुण के कारण हैं जिसके अधीन होकर एक प्राणी कर्म करता है :

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्मविभागशः ।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

"प्रकृति के तीन गुणों और कर्तव्य कर्मों के विभाजन के अनुसार मैंने चार वर्णों की रचना की है। फिर भी मुझ अविनाशी को ही तुम इस वर्ण विभाग अकर्त्ता ही समझो।"
(श्रीमद्भगवद्गीता ४.१३)

इस भगवत् वाक्य से यह नहीं समझना चाहिए कि यह भारतवर्ष में विद्यमान् आज के विकृत जातिवाद का बोध करता है। श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है : '**गुणकर्मविभागशः**'। मनुष्य जाति का वर्गीकरण उन गुणों के अनुसार किया गया है, जिनके अधीन वे कर्म करते हैं, और यह सिद्धान्त सारे विश्व की मानवजाति पर चरितार्थ होता है। जब श्रीकृष्ण कुछ कहते हैं, तो हमें समझ लेना चाहिए कि वे जो कुछ कहते हैं, वह सीमित नहीं होता, अपितु सार्वकालिक, सार्वजनीक सत्य होता है। वे स्वयं को सब जीवों का पिता कहते हैं पशु, पक्षी, जलचर, वृक्षलता, गुल्म, कीट पतंग सभी उनकी सन्तति हैं। श्रीकृष्ण घोषणा करते हैं कि समस्त विश्व ब्रह्माण्ड प्रकृति के तीन गुणों के प्रवर्तन से मोहित है। हम भी उसी माया के अधीन हैं, अतः उन्हें तत्त्वतः नहीं समझ पाते।

इस माया का स्वरूप क्या है? इसे कैसे तरा जा सकता है? यह भी श्रीमद्भगवद्गीता में समझा दिया गया है।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

"मेरी यह त्रिगुणात्मिका प्रकृति (माया) बड़ी दुस्तर है। किन्तु जो मेरे शरणागत हैं, वे इससे तर जाते हैं।"

(श्रीमद्भगवद्गीता ७.१४)

कोई मनुष्य बौद्धिक तर्क वितर्क से प्रकृति के इन तीन गुणों के बन्धन से छुटकारा नहीं पा सकता। ये तीनों गुण बड़े ही बलवान् और दुर्जय हैं। क्या हम अनुभव नहीं करते कि हम किस बुरी तरह से त्रिगुणात्मिका प्रकृति के चंगुल में है? 'गुण' शब्द का अर्थ रस्सी भी है। जब कोई

व्यक्ति तीन वटों वाली रस्सी से बँधा हो, तो हम समझ सकते हैं कि वह कितना कस के बँधा हुआ होगा। हमारे हाथ पैर सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण की सुदृढ़ रस्सियों से बँधे हुए है। तो क्या हम मुक्त होने की आशा छोड़ बैठें ? नही क्योंकि यहां श्रीकृष्ण हमें आश्वासन देते हैं कि जो उनकी शरण में आ जाता है वह तत्क्षण मुक्त हो जाता है। जव कोई व्यक्ति कृष्णभावना से किसी प्रकार से भी मुक्त हो जाता है, तो वह मुक्त हो जाता है।

हम सब कृष्ण से सम्वद्ध हैं, क्योंकि हम सव उनकी सन्तान है। एक पुत्र अपने पिता से कितना भी असहमत हो, किन्तु उसके लिए वह सम्वन्ध तोड़ना सम्भव नहीं है। अपने जीवन में उससे निश्चय ही पूछा जायेगा कि वह है कौन, और उसे निश्चय ही उत्तर देना पड़ेगा कि "मैं अमुक का पुत्र हूँ।" वह सम्वन्ध नहीं तोड़ा जा सकता। इसी प्रकार हम सव भगवान् की सन्तान हैं, और उससे हमारा यह सम्वन्ध सनातन है, किन्तु हम केवल यह भूल गये हैं। श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् हैं। सर्वव्यापक हैं। सर्वश्रीसमपन्न हैं। सर्वातिशायी सुन्दर हैं। सर्वज्ञ हैं और सर्वातिशायी वैराग्यवान् भी हैं। यद्यपि हम इतनी महच्छक्ति के कृपापात्र हैं, तथापि हम उसे भूले हुए हैं। यदि एक धनी व्यक्ति का पुत्र अपने पिता को भूल जाता है, अपना घर छोड़ देता है और पागल हो जाता है, सोने के लिए वह सड़क पर लेट जाता है, भोजन के लिए धन की भिक्षा माँगता है, तो यह सब उसकी आत्म विस्मृति के कारण है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति उस भूले हुए को यह वतादे कि वह केवल इसलिए दुःख भोग रहा है कि उसने अपने पिता का घर छोड़ दिया है उसका पिता एक वहुत धनी व्यक्ति और एक विशाल सम्पत्ति का स्वामी है और इस विछुड़े हुए पुत्र को फिर से पाने के लिए उत्सुक है तो उस पुत्र को कितना लाभ

हो सकता है, यह सहज अनुमेय है। इस भौतिक जगत् में हम सदैव त्रिविध तापों से दुखी होते रहते हैं—? आध्यात्मिक दु:ख—(अपने शरीर और मन से प्राप्त होने वाले दु:ख)— आधिभौतिक-दु:ख (अन्य प्राणियों से प्राप्त होने वाले दु:ख) ३—आधिदैविक दु:ख (प्रकृति के प्रकोप-यथा भूकम्प, अग्नि-काण्ड झंझावात आदि से प्राप्त होने वाले दु:ख) प्रकृति के तीन गुणों से आच्छादित रहने के कारण हम तीनों तापों की ओर से बेसुध हैं। किन्तु हमें सदैव जानना चाहिए कि इस भौतिक जगत् में हम इतना दु:ख भोगते रहते हैं। जिस व्यक्ति की चेतना पर्याप्त रूप से विकसित है और जो बुद्धिमान् है, वह प्रश्न करता है, "मैं क्यों दु:खी हूँ? दु:ख तो मैं नहीं चाहता" जव यह प्रश्न उठता है, तो मनुष्य के लिए कृष्ण-भावना से भावित होने का सुयोग आता है।

जैसे ही हम अपने आपको श्रीकृष्ण की शरण में ले आते हैं, कृष्ण वडी कृपालुता से हमारा स्वागत करते हैं। ठीक एक खोये हुए बालक के समान जो अपने पिता से कहता है—"मेरे प्रिय पिता, कुछ भ्रांतियों के कारण मैंने आपकी छत्र छाया को छोड़ दिया था। मैंने वहुत दु:ख उठाया। अव मैं पुन: आपके पास आया हूँ।" पिता अपने पुत्र को गले से लगाकर कहता है—"मेरे प्रिय पुत्र आओ, जव से तुम विछुड़े, मैं तुम्हारे लिए वहुत व्यग्रथा। अव तुम लोट आये हो तो मैं वहुत प्रसन्न हूँ।" पिता इतना कृपालु है। हम भी ठीक इसी स्थिति में हैं। हमें भी कृष्ण के शरणागत होना है, और यह कोई वहुत कठिन कार्य नहीं है। जब एक पुत्र अपने पिता के प्रति आत्म-समर्पण करता है तव क्या वह एक वहुत कठिन कार्य होता है? यह एक नितान्त स्वाभाविक बात है और पिता सदैव अपने पुत्र का स्वागत करने के लिए तैयार रहता है। इसमें अपमान का कोई प्रश्न नहीं। यदि हम अपने परम

पिता के समक्ष नतमस्तक होकर उसके चरणों को छुएँ तो न तो हमें कोई हानि है, और न यह कुछ कठिन है। वास्तव में यह हमारे लिए गौरव की बात है। हम ऐसा क्यों न करें? कृष्ण की शरण में जाने से हम तुरन्त उनकी सुरक्षा में आ जाते हैं, और समस्त तापों से छुटकारा पा जाते हैं। सारे शास्त्र इस बात का समर्थन करते हैं: गीता के अन्त में श्रीकृष्ण कहते हैं:

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"सब धर्मों को छोड़कर तुम एक मेरी शरण में आ जाओ मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा, शोक मत करो।"

(श्रीमद्भगवद्गीता १८.६६)

जब हम अपन को भगवान् की शरण में अर्पित कर देते हैं तो हम उसकी रक्षा में आ जाते हैं, और उस समय से फिर हमें किसी प्रकार का भय नहीं रहता। जब बालक अपने माता पिता की सुरक्षा में होते हैं, तो वह निर्भय होते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनके माता पिता उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचने देंगे। **'मामेव ये प्रपद्यन्ते'** वाक्य के द्वारा कृष्ण प्रतिज्ञा करते हैं कि जो उनकी शरण में आ जाता है, उसके लिए भय का कोई कारण नहीं रहता।

यदि कृष्ण की शरण में आ जाना इतना सरल कार्य है, तो लोग ऐसा करते क्यों नहीं? अपितु अनेक लोग हैं जो ईश्वर के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लगा रहे हैं और सिद्ध कर रहे हैं कि प्रकृति और विज्ञान ही सब कुछ है, भगवान् कुछ नहीं। सभ्यता को ऐसी तथाकथित प्रगति को ज्ञान की दृष्टि में कहना चाहिए कि मानव जाति अधिकाधिक विक्षिप्त होती जा रही है। रोग निर्मूल होने के स्थान पर अधिकाधिक बढ़

रहा है। लोग ईश्वर की चिन्ता नहीं कर रहे हैं, प्रकृति की चिन्ता कर रहे हैं; और प्रकृति का यह कार्य है कि वह त्रिविधतापों के रूप में उन्हें पदाहत कर रही है। प्रकृति नित्य चौबीसों घण्टे ये आघात कर रही है। किन्तु हम इन आघातों के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि इन्हें ठीक समझते हैं और घटनाओं का स्वाभाविक क्रम ही मानने लगे हैं। हम अपनी शिक्षा-दीक्षा पर बहुत गर्व करते हैं किन्तु भौतिक प्रकृति से कहते हैं, मुझ पर लातें जमाने के लिए मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ, कृपया इसे जारी रखो। इस प्रकार प्रवंचित होकर हम सोचते हैं कि हमने इस भौतिक प्रकृति को जीत भी लिया है। किन्तु क्या ऐसा हो सका है? प्रकृति अब भी हम पर जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु का आघात कर ही रही है। क्या किसी ने इन समस्याओं को सुलझाया है? तो बताइए हमने ज्ञान और सभ्यता में क्या प्रगति की? हम प्रकृति के कठोर नियमों के अधीन हैं, किन्तु अब भी हम सोचते हैं कि हम जीत गये हैं। यही 'माया' है।

इस शरीर को इसके पिता को समर्पित करने में कुछ कठिनाइयाँ हो सकती हैं, क्योंकि इसके पिता का ज्ञान और शक्ति सीमित हो, किन्तु कृष्ण साधारण पिता के समान नहीं हैं। कृष्ण अनन्त है। वे षडैश्वर्य सम्पन्न हैं—उनमें पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति, पूर्ण श्री, पूर्ण सौंदर्य, पूर्ण यश और पूर्ण वैराग्य है। क्या हमें ऐसे महान् पिता की शरण में जाने और उनके महान् गुणों का आनन्द लेने पर स्वयं को भाग्यशाली नहीं समझना चाहिए? किन्तु तब भी कोई इस ओर ध्यान नहीं देता और अब प्रत्येक व्यक्ति प्रचार कर रहा है कि ईश्वर नहीं है। लोग ईश्वर की खोज करके उसका प्रत्यक्षीकरण क्यों नहीं करते? इसका उत्तर गीता के अगले श्लोक में दिया गया है:

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।

"माया द्वारा जिनका शास्त्रोपदेशजन्य ज्ञान विलुप्त हो गया है, ऐसे दुष्कर्मकारी, मूढ नराधमगण, आसुरी भाव के आश्रित हुए, मुझे प्राप्त नहीं कर सकते ।"

(श्रीमद्भगवद्गीता ७-१५)

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने मूढ पुरुषों का श्रेणी विभाजन कर दिया है। एक दुष्कृति सदैव शास्त्राज्ञा के विपरीत आचरण करता है। वर्तमान सभ्यता का एक मात्र कार्य शास्त्र नियमों को भंग करना है। परिभाषा के अनुसार एक सुकृती वह है जो शास्त्र नियमों को भंग नहीं करता। एक दुष्कृति और एक सुकृती में अन्तर करने के लिए कुछ माप दन्ड होना चाहिए। प्रत्येक सभ्य देश का अपना कुछ शास्त्र होता है। यह शास्त्र चाहे ईसाई हो, हिन्दू हो, मुस्लिम हो, या बौद्ध इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। विशेष बात यह है कि सभी धर्मो में शास्त्र विद्यमान है। जो पुरुष शास्त्र के सिद्धान्तों पर नहीं चलता, उसे दुष्कृती कहते हैं।

इस श्लोक में उक्त एक अन्य श्रेणी है 'मूढ'। प्रथम कोटि का मूर्ख। 'नराधम' वह है जो मनुष्यता से गिरा हुआ है। '**माययापहृतज्ञान**' से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसका ज्ञान माया के द्वारा अपहृत कर लिया गया है। '**आसुर भावमा-श्रिताः**' से तात्पर्य उन लोगों से है, जो पूर्णतयानास्तिक हैं। यद्यपि परम पिता की शरण लेने में कभी कोई हानि नहीं है, किन्तु जो लोग उपर्युक्त चरित्र वाले हैं, वे ऐसा कभी नहीं करते। फलतः वे परमपिता के सेवकों द्वारा दण्डित किये जाते हैं। उन्हें थप्पड़ चाँटे लगाये जाते हैं, बेंत लगाये जाते हैं : लातें जमाई जाती हैं और उन्हें बहुत दुःख उठाना पड़ता है। जैसे एक पिता अपने उदण्ड बालक को शिक्षा देता है वैसे ही

भौतिक प्रकृति कुछ दण्ड विधान करती है। साथ ही प्रकृति अन्न और अन्य आवश्यक पदार्थ देकर हमारा पालन पोषण भी कर रही है। ये दोनों प्रक्रियाएँ साथ साथ चल रही हैं क्योंकि हम एक सबसे अधिक धनवान् पिता के पुत्र हैं और यद्यपि हम कृष्ण की शरण नहीं लेते तब भी वह हम पर कृपा करते हैं। परमपिता द्वारा इतनी उत्तम रीति से परिपालित होने पर भी एक दुष्कृती अविहित कर्म करता रहता है। अतः वह व्यक्ति मूढ ही है जो दण्डित होने पर तुला हुआ है और वह नराधम ही है जो इस मनुष्य देह और जीवन को कृष्ण को समझने में प्रयुक्त नहीं करता। यदि कोई मानव अपने इस जीवन का उपयोग अपने वास्तविक पिता के साथ सम्बन्ध को पुनः जाग्रत् करने में नहीं करता तो उसे मनुष्यता से गिरा हुआ ही समझना चाहिए।

पशुवर्ग केवल आहार, निद्रा, (आत्मरक्षार्थ) भय, तथा मैथुन में संलग्न रहकर मर जाता है। वे अपने को उच्चतर ज्ञान के योग्य नहीं बना सकते, क्योंकि वह निम्न प्रकार की जीव योनियों में सम्भव नहीं है। यदि एक मनुष्य भी पशु जाति के कर्मों में लिप्त रहे और अपनी योग्यता का उपयोग उच्चतर ज्ञान को प्राप्त करने में न करे तो वह मनुष्य के मान दण्ड से गिर कर आगामी जीवन में पशु शरीर धारण करने को ही अभिशप्त हो जाता है। श्रीकृष्ण की कृपा से हमें एक अत्यन्त विकसित शरीर और बुद्धि प्राप्त हुई है, किन्तु यदि हम उनका उपयोग ही न करें तो वे उन्हें हमें दुबारा क्यों देने लगे? हमें समझ लेना चाहिए कि यह मनुष्य शरीर कई लाख वर्षों के विकास क्रम की देन है, और यह शरीर अपने आप में जन्म मृत्यु के चक्र से छूटने का एक सुखद संयोग है।

यह शरीर हमें ८४ लाख भिन्न भिन्न योनियों के उपरान्त मिला है, जो जीवन क्रम के अन्तर्गत निरन्तर विकसित हो

वनाने में सफल हुए हैं। इससे केवल हिंसा की क्रिया ही तीव्र हुई है। हम वड़े अभिमान के साथ सोचते हैं कि यह ज्ञान की प्रगति है। किन्तु यदि हम ऐसा आविष्कार कर सकें जिससे मृत्यु को रोका जा सके तो समझना चाहिए कि हम ज्ञान में आगे वढ़े हैं। मृत्यु तो भौतिक प्रकृति में पहले से ही उपस्थित है। किन्तु हम तो एकदम सवका संहार करने के लिए मृत्यु को ही आमंत्रित करते हैं। यही गीतोक्त '**माययापहृत**' ज्ञान अर्थात् माया के द्वारा अपहृत ज्ञान है।

असुर और अनिश्वरवादी लोग ईश्वर की सत्ता नहीं मानते। यदि परम पिता परमात्मा का अस्तित्व न हो तो हमारा भी अस्तित्व न हो। फिर ईश्वर के अस्तित्व को न मानने का औचित्य क्या है ? वेदों में मानव समाज के दो वर्ग वताये गये हैं—देव और असुर। परम पिता परमात्मा के भक्त देव हैं क्योंकि वे स्वयं ईश्वर वन जाते हैं। इसके विपरीत जो लोग ईश्वर के अधिकार को चुनौति देते हैं वे असुर हैं। मानव समाज में ये दो वर्ग सदा से पाये जाते हैं।

जिस प्रकार चार प्रकार के दुष्कर्ता जन हैं जो कभी कृष्ण की शरण नहीं लेते, उसी प्रकार चार प्रकार के सुकृती जन हैं। उनको आगे के श्लोक में श्रेणी विभाजित हं।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

"हे भरतश्रेष्ठ, चार प्रकार के सुकृती जन मुझको भजते हैं—आर्त (दुःखी) जिज्ञासु (जानने की इच्छा वाला) अथार्थी (सम्पत्तिका इच्छुक) और ज्ञानी।"

(श्रीमद्भगवद्गीता ७-१६)

यह भौतिक जगत् दुःखपूर्ण है और पुण्यात्मा एवं पापी दोनों ही उसके भाजन हैं शीतऋतु की ठण्डक का प्रभाव सव पर

समान होता है। वह पुण्यात्मा या पापी और धनी या निर्धन का भेद नहीं करती। किन्तु पुण्यात्मा और पापी में बस यही अन्तर है कि पुण्यात्मा का ध्यान दुःख की स्थिति में ईश्वर की ओर जाता है। जब कोई व्यक्ति दुःखी होता है तो प्रायः वह गिरजा या मन्दिर में जाता है और प्रार्थना करता है—'हे प्रभो! मैं संकट में हूं, कृपया मेरी सहायता कीजिए।' यद्यपि वह भौतिक आवश्यकतावश ईश्वर का स्मरण करता है तथापि ऐसे व्यक्ति को पुण्यात्मा ही समझना चाहिए, क्योंकि दुःख में ही सही उसने ईश्वर को याद तो किया। इसी प्रकार एक निर्धन व्यक्ति गिरजा या मंदिर में जाकर प्रार्थना करता है—मेरे प्रभो, मुझे कुछ धन दीजिए। "दूसरी ओर जिज्ञासु व्यक्ति प्रायः बुद्धिमान होते हैं। वे पदार्थों का स्वरूप समझने के लिए वैज्ञानिक शोध करते हैं। ऐसे जिज्ञासु भी पुण्यात्मा माने जाते हैं, क्योंकि उनके शोध की दिशा उचित उद्देश्य की ओर उन्मुख है; जो पुरुष अपने स्वरूप को तत्त्वतः समझा हुआ है वह ज्ञानी कहलाता है। ऐसे ज्ञानी चाहे निर्गुण निराकार ब्रह्म की परिकल्पना करे, किन्तु सर्वोच्च परम सत्य के शरणापन्न होने के कारण उसे भी पुण्यात्मा ही मानना चाहिए। इस प्रकार उपर्युक्त चारों प्रकार के व्यक्ति सुकृती और पुण्यात्मा ही हैं, क्योंकि ये सब ईश्वरवादी हैं।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

"उनमें भी मुझमें एकीभाव से स्थित अन्य प्रेम-भक्ति वाला ज्ञानी भक्त सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि उसे मैं बहुत प्रिय हूँ और वह मुझे बहुत प्रिय है।" (श्रीमद्भागवद्गीता ७-१७)

ईश्वर को भजने वाले उक्त चारों श्रेणी के मनुष्यों में जो मनुष्य दार्शनिक दृष्टि से ईश्वर का स्वरूप समझने का प्रयत्न

करता है और साथ ही कृष्णभावना से भावित होने के लिए भी प्रयत्नशील है, वही सर्व श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि वास्तव में ऐसा व्यक्ति उन्हे वहुत प्रिय है, क्योंकि उसे ईश्वर को जानने के अतिरिक्त कोई और कार्य ही नहीं है। अन्य तीन उससे न्यून हैं। किसी को ईश्वर से कुछ मांगने के लिए प्रार्थना नहीं करनी पड़ती और जो ऐसा करता है वह मूर्ख है क्योंकि वह नहीं जानता कि सर्वज्ञ प्रभु उसके हृदय में स्थित है और भली-भाँति जानते हैं कि उनका भक्त संकट में है या उसे धन की आवश्यकता है। बुद्धिमान् व्यक्ति यह वात जानता है और भौतिक दुःखों से छुटकारा पाने के लिए प्रभु से प्रार्थना नहीं करता। इसके विपरीत वह प्रभु की महिमा का गान करता है और सांसारिक लोगों को यह वताता है कि प्रभु कितने महान् हैं। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-रोटी, कपड़ा और मकान के लिए प्रभु का भजन नहीं करता। सच्चा भक्त जव दुःख में होता, है तव भी कहता है, 'प्रभो, यह आपकी कृपा है। आपने केवल मुझे शिक्षा देने के लिए यह दुःख दिया है। वैसे तो मुझे इससे कहीं अधिक दुःख मिलना चाहिए था, किन्तु आपने अपनी सहज कृपा से इसे वहुत कम कर दिया है।" यह एक ऐसे सच्चे भक्त की दृष्टि है जो कि उद्विग्न नहीं होता।

जो व्यक्ति कृष्णभावनाभावित होता है, वह भौतिक कष्टों, अपमान अथवा सम्मान की चिन्ता नहीं करता क्योंकि वह इन सवसे दूर होता है। वह भली-भाँति जानता है कि दुःख और मानापमान का सम्वन्ध केवल शरीर से है, और वह शरीर नहीं है। उदाहरण के लिए सुकरात को, जो आत्मा की अमरता में विश्वास रखता था, मृत्यु दण्ड घोषित हुआ। उससे यह पूछे जाने पर कि उसे कैसे गाड़ा जाय, उसने उत्तर दिया "सवसे पहले शायद तुम्हें मुझे पकड़ना होगा।" अतः

जो व्यक्ति यह जानता है कि वह शरीर नहीं है, वह उद्विग्न नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि आत्मा को पकड़ा नहीं जा सकता, न उसे कष्ट दिया जा सकता है और न मारा जा सकता है। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के विज्ञान से परिचित है, वह पूर्णतया जानता है कि वह शरीर नहीं है। वह श्रीकृष्ण का अंश है, और यद्यपि किसी प्रकार उसे यह भौतिक शरीर मिल गया है, उसे भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों से दूर रहना है। उसका सम्वन्ध सत्त्व रज और तम से नहीं अपितु श्रीकृष्ण से है। जो इस रहस्य को समझता है, वही ज्ञानी है। और वह श्रीकृष्ण को अतिशय प्रिय है। एक दु:खी व्यक्ति को यदि सम्पन्नता प्राप्त हो जाय तो वह ईश्वर को भूल जायगा। किन्तु एक ज्ञानी; जो ईश्वर के स्वरूप को जानता है उसे कभी नहीं भूलेगा।

ज्ञानियों की एक श्रेणी निराकारवादियों की है, जो कहते हैं कि निर्गुणब्रह्म की उपासना अतिकठिन है, अत: ईश्वर के किसी स्वरूप की कल्पना करना अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति ईश्वर के स्वरूप की कल्पना नहीं कर सकता क्योंकि वह वहुत ही महान् है। कोई व्यक्ति किसी स्वरूप की कल्पना कर सकता है किन्तु यह एक जटिल मिश्रण होगा। संसार में दोनों प्रकार के लोग हैं, एक वे जो ईश्वर की कल्पना करते हैं, दूसरे वे जो उसका कोई स्वरूप होने का निषेध करते हैं। इन दोनों में से कोई ज्ञानी नहीं है। जो लोग ईश्वर के स्वरूप की कल्पना करते हैं, वे मूर्ति भंजक कहलाते हैं। भारत में हिन्दू- मुस्लिम दंगों के वीच लोग हिन्दू मंदिरों में जाकर भगवान् की प्रतिमाएं और मूर्तियां तोड़ते हैं। हिन्दू लोग भी ऐसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। इस प्रकार दोनों सोचते हैं—"हमने हिन्दू ईश्वर को मार डाला, हमने मुस्लिम खुदा को मार डाला" आदि। इसी प्रकार जिस समय गाँधी जी अपने सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे, वहुत से भारतीय सडकों पर निकल कर पत्रमंजूषाओं

(लैटरबोक्स) को नष्ट कर देते थे, और इस प्रकार समझते थे कि वे सरकार की डाकसेवा को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं। इस प्रकार की मनोवृत्तियों वाले लोग ज्ञानी नहीं है। हिन्दू-मुसलमानों और ईसाइयों के बीच हुए सब धर्म-युद्ध अज्ञान से प्रेरित थे। जो व्यक्ति ज्ञाननिष्ठ है, वह जानता है कि ईश्वर तो एक ही है, वह हिन्दू, मुस्लिम या ईसाई नहीं हो सकता।

यह हमारी कल्पना है कि ईश्वर ऐसा है, वैसा है, यह सब कोरी कल्पना है। सच्चा ज्ञानी जानता है कि ईश्वर अनिवर्चनीय और अतीन्द्रिय है। जो जानता है कि ईश्वर प्रकृति के तीनों गुणों से परे है, वही ईश्वर को तत्त्वतः जानता है। ईश्वर सदा हमारे साथ, हमारे हृदय में है। जब हम शरीर छोड़ते हैं, तब ईश्वर भी हमारे साथ जाता है और जब हम दूसरा शरीर धारण करते हैं, तब भी ईश्वर केवल यह देखने हमारे साथ जाता है कि हम क्या कर रहे हैं। हम आखिर कब उसकी ओर उन्मुख होंगे ? वह सदा यही प्रतीक्षा कर रहा है। ज्योंही हम ईश्वर की ओर उन्मुख होते हैं वह कहता है मेरे प्रिय पुत्र आओ, मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम सदा से मुझे प्रिय हो। गीताके **'स च मम् प्रियः:'** वाक्य का यही आशय है।

ज्ञानी पुरुष ईश्वर के विज्ञान को यथार्थतः समझता है। जो व्यक्ति केवल इतना समझता है कि 'ईश्वर परम कृपालु है' वह प्राथमिक स्थिति में है, किन्तु जो व्यक्ति वस्तुतः यह समझता है कि ईश्वर कितना महान् और कृपालु है, वह और आगे प्रगति करता है। वह ज्ञान श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भागवद् गीता से प्राप्त हो सकता है। जो व्यक्ति सचमुच ईश्वर के विषय में जिज्ञासु हो, उसे ईश्वर के विज्ञान—श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करना चाहिए।

५-परम प्रभु की ओर

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

"ये सभी भक्त निःसंदेह श्रेष्ठ हैं किन्तु जो पुरुष ज्ञानी है, वह तो मेरी आत्मा ही है। मेरा स्वरूप ही है क्योंकि वह स्थिर बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति स्वरूप मुझमें ही निरन्तर भली-भाँति स्थित है।"

(श्रीमद्भगवद्गीता ७-१८)

यहाँ कृष्ण कहते हैं कि अति जिज्ञासु और अथार्थी आदि जो पुरुष भी मेरी शरण में आते हैं वे सभी उदार अर्थात् उत्तम हैं, किन्तु जो उनका ज्ञानी भक्त है, वह उन्हें बहुत प्रिय है। अन्य भक्त भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि यह समझा जाता है कि यदि वे ईश्वर के मार्ग पर चलते रहे, तो क्रमशः वे भी ज्ञानी भक्त के समान श्रेष्ठ हो जाएँगे। किन्तु प्रायः होता है कि जब कोई व्यक्ति किसी लाभ के लिए चर्च या मन्दिर में जाता है, और धन नहीं मिलता, तो वह यह निष्कर्ष निकाल लेता है कि ईश्वर की शरण में जाना व्यर्थ है, और वह चर्च या मंदिर से सम्बन्ध तोड़ लेता है। सकाम भाव से ईश्वर की शरण लेने में यही भय है। उदाहरण के लिए द्वितीय विश्व युद्ध में अनेक जर्मन सैनिकों की पत्नियाँ अपने अपने पति की सकुशल वापिसी की कामना लेकर चर्च में प्रार्थना करने गईं, किन्तु जब उन्हें पता लगा कि उनके पति युद्ध में मारे गये हैं, तो वे सब नास्तिक हो गईं। इस प्रकार हम चाहते हैं कि ईश्वर हमारी आवश्यकता पूर्ति करने वाला बन जाय, और जब वह ऐसा नहीं करता तो हम कहने लगते हैं,—ईश्वर है

ही नहीं। यह भौतिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने का प्रभाव है। इस सम्वन्ध में राजपरिवार के एक पंचवर्षीय छोटे वालक ध्रुव की कथा है। ध्रुव के पिता राजा उत्तानपाद ने अपनी रानी सुमति से विमुख होकर उसे पदच्युत करके एक अन्य स्त्री सुरुचि को रानी वना लिया। अव सुरुचि ध्रुव की सौतेली माँ हो गई। वह ध्रुव से वड़ा द्वेष करने लगी। एक दिन जव ध्रुव अपने पिता की गोद में बैठा हुआ था, सुरुचि ने यह कहकर उसका अपमान किया "तुम अपने पिता की गोद में नहीं बैठ सकते क्योंकि तुम मेरे उदर से उत्पन्न नहीं हुए हो।" उसने ध्रुव को राजा की गोद से खींचकर उतार दिया। ध्रुव को वड़ा ही क्रोध आया। वह एक क्षत्रिय पुत्र था, और क्षत्रिय लोग अपने आवेश के लिए प्रसिद्ध हैं। ध्रुव को यह वड़ा अपमान लगा, और वह अपनी माँ सुमति के पास पहुँचा, जिसे राजा ने अपदस्थ कर दिया था।

ध्रुव ने अपनी माँ से कहा—"माँ, मेरी सौतेली माँ ने मुझे पिताजी की गोद से उतार कर मेरा वड़ा अपमान किया है।"

माँ ने उत्तर दिया, "प्रिय वत्स, तुम्हारे पिता अव मेरी ही कोई चिन्ता नहीं करते, मैं स्वयं असहाय हूं, मैं क्या कर सकती हूं।"

ध्रुव ने पूछा—"ठीक है। यह वताइये कि मैं सौतेली माँ से प्रतिशोध कैसे ले सकता हूं।" माँ ने उत्तर दिया, "प्रिय वत्स ! तुम असहाय हो। यदि ईश्वर सहायता करे तो ही तुम वदला ले सकते हो।"

ध्रुव ने उत्साह पूर्वक पूछा, "अच्छा, ईश्वर कहाँ है ? माँ ने उत्तर दिया—"अनेक ऋषि-मुनि ईश्वर को प्राप्त करने

के लिए तपोवन में जाते हैं, और वहाँ कठोर तपस्या करते हैं।"

यह सुनकर ध्रुव तुरन्त ही तपोवन को चला गया और वहाँ व्याघ्र और हाथी जैसे वन्य प्राणियों से पूछता था, "क्या तुम ईश्वर हो? क्या तुम ईश्वर हो?" इस प्रकार वह प्रत्येक वन्य प्राणी से पूछता था। ईश्वर के सम्बन्ध में ध्रुव की ऐसी प्रबल जिज्ञासा देखकर भगवान कृष्ण ने नारद को यह स्थिति जानने के लिए उस तपोवन में ध्रुव के पास भेजा।

नारद ने कहा, "वत्स, तुम एक राज परिवार से हो। तुम यह कठोर व्रत और तपस्या नहीं कर सकते। तुम्हारे माता पिता तुम्हारे लिए बहुत चिन्तित हैं। तुम घर लौट जाओ।"

ध्रुव ने कहा "मुनिवर इस प्रकार मेरा ध्यान बँटाने का प्रयत्न न कीजिए। यदि आप ईश्वर के विषय में कुछ जानते हैं, या आप कुछ बता सकते हैं कि मैं ईश्वर के दर्शन कैसे कर सकता हूं, तो बताइये, अन्यथा यहाँ से चले जाइए। विघ्न न कीजिए।"

जब नारद ने देखा कि ध्रुव ईश्वर के दर्शन के लिए इतना दृढ़संकल्प है तो उन्होंने उसे शिष्य रूप में दीक्षित करके "**ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय**" मंत्र दिया। इस मंत्र का जप करके ध्रुव परिपूर्ण हो गया और उसके समक्ष भगवान् नारायण प्रकट हो गये।

भगवान ने ध्रुव से पूछा, "वत्स बोलो तुम क्या चाहते हो? तुम जो चाहते हो, वह सब कुछ मुझसे प्राप्त कर सकते हो।"

ध्रुव ने उत्तर दिया, "परम कारुणिक प्रभो, मैंने केवल अपने पिता के राज्य के लिए इतना कठोर तप किया है,

किन्तु अव तो मुझे आपके दर्शन हो गये हैं। बड़े बड़े ऋषि-मुनियों को भी आपके दर्शन अलभ्य हैं। मुझे तो अनिर्वचनीय लाभ हुआ है। मैंने कुछ तुच्छ पदार्थों और कांच के टुकड़ों के लिए घर छोड़ा था, किन्तु वदले में सौभाग्य से मुझे तो महान् मूल्यवान मणि प्राप्त हो गया है अव मैं परम सन्तुष्ट हूं। अव मुझे आपसे कुछ भी नहीं माँगना है।

इस प्रकार कोई व्यक्ति निर्धनता या घोर दुःख से पीड़ित होने पर भी ध्रुव के समान दृढ़ संकल्प होकर ईश्वर के दर्शन और वरदान के लिए उनकी शरण में जाता है और यदि उसे ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं तो वह उनसे किसी भौतिक पदार्थ की याचना नहीं करेगा।

वह भौतिक पदार्थों के स्वामित्व की व्यर्थता को समझने लगता है और वास्तविक पदार्थ की प्राप्ति के लिए मायिक प्रपंचों को छोड़ देता है। जब कोई व्यक्ति ध्रुव महाराज के समान कृष्णभावना में प्रतिष्ठित हो जाता है तो वह पूर्णतया तुष्ट होकर किसी वस्तु की कामना नहीं करता।

ज्ञानी पुरुष जानता है कि भौतिक पदार्थ क्षणिक चकाचौंध वाले हैं। वह यह भी जानता है कि सब प्रकार के भौतिक लाभों के साथ तीन प्रकार की उलझनें हैं, पहली-मनुष्य अपने कार्य से कुछ फल चाहता है। दूसरी मनुष्य अपनी संपत्ति के कारण दूसरों से प्रशंसा चाहता है और तीसरी मनुष्य अपनी संम्पत्ति के कारण ख्याति भी चाहता है। वह यह जानता है कि ये तीनों केवल शरीर रहते हुए ही लागू होती हैं। जब शरीर समाप्त हो जाता है तो ये भी समाप्त हो जाती हैं जब शरीर मर जाता है तो कोई भी व्यक्ति धनवान् नहीं रह जाता। उस समय वह केवल आत्मा रह जाता है, और अपने कार्यों के अनुसार उसे दूसरे शरीर में प्रवेश करना पड़ता है। गीता कहती है कि एक ज्ञानी पुरुष इससे मोहित

नहीं होता। क्योंकि वह जानता है कि वास्तविकता क्या है ! तब भौतिक सम्पत्ति जुटाने में उसे स्वयं को क्यों खपाना चाहिए ? उसकी दृष्टि यह होती है—"मेरा परमप्रभु कृष्ण से शाश्वत सम्बन्ध है। मुझे इस सम्बन्ध को सुदृढ़ वनाना चाहिए जिससे कृष्ण पुनः मुझे अपने परमधाम में स्वीकार कर लें।

विश्वब्रह्माण्ड की स्थिति श्रीकृष्ण के साथ हमें यह सम्बन्ध पुनः स्थापित करने और ईश्वरोन्मुख होने की पूरी सुविधाएँ प्रदान कर रही है। जीवन में यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। हमें जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता है—भूमि, गृह, अन्न, वस्त्र, फल, दुग्ध वे ईश्वर द्वारा प्रदान की जा रही हैं। हमें केवल शान्तिपूर्वक जीवनयापन करते हुए कृष्ण भावना उत्पन्न करनी है। जीवन में यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। अतः अन्न, वस्त्र, गृह, सुरक्षा और काम के रूप में ईश्वर ने जो कुछ भी हमें दिया है, हमें उससे सन्तुष्ट रहना चाहिए और अधिकाधिक की कामना नहीं करनी चाहिए। वही सभ्यता सर्वश्रेष्ठ है, जो सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त का पालन करती है। भोजन अथवा काम को किसी कर्मशीला (फैक्टरी) में निर्माण करना सम्भव नहीं हैं। ये और जो भी पदार्थ हमें चाहिए वे ईश्वर द्वारा प्रदत्त होते हैं। हमारा कार्य तो वस इतना है कि इन पदार्थों का लाभ उठाएँ और आस्तिक भाव धारण करें। यद्यपि ईश्वर ने इस पृथ्वी पर शान्तिपूर्वक रहने के लिए, कृष्णभावना उत्पन्न करने के लिए और अन्त में उनकी शरण में आने की सब सुविधाएँ हमें प्रदान की हैं; किन्तु इस कलयुग में हम वड़े अभागे हैं। हम अल्पायु हैं, और अनेक लोग भोजन, आवास, विवाहित जीवन और प्रकृति के प्रहारों से सुरक्षा के उपायों से वंचित हैं। यह स्थिति कालयुग के प्रभाव के कारण है। इसीलिए इस युग की भयावह स्थिति

को देखकर चैतन्यमहाप्रभु ने आध्यात्मिक-जीवन-पद्धति के निर्माण की अनिवार्य आवश्यकता पर वल दिया। यह हमें कैसे करना चाहिए? चैतन्यमहाप्रभु ने इसका उपाय बताया है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरऽन्यथा ।।

अर्थात् "केवल हरि का नाम, हरि का नाम, हरि का नाम ही रक्षक है। कलियुग में और कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।" अतः केवल हरेकृष्ण संकीर्तन कीजिए। इस वात की चिन्ता मत कीजिए कि आप कर्मशाला (फैक्टरी) में, नरक में, झोपड़ी में या किसी गगन चुम्वी भवन में कहाँ हैं। केवल 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।। इस महामंत्र का संकीर्तन करते रहिए। इसमें न कोई व्यय है, न वाधा, न जाति-वन्धन है, न धर्म-वन्धन है, न वर्ण-भेद है—इसे कोई भी कर सकता है। केवल सस्वर गाइये और सुनिये।

सौभाग्य से यदि कोई मनुष्य कृष्णभावना से युक्त हो जाता है और भगवद्भक्ति की साधना किसी प्रामाणिक गुरु के संरक्षण में करता है तो वह निश्चय ही प्रभु को प्राप्त कर सकता है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।

"अनेक जन्मों के उपरान्त ज्ञानी मेरी शरण लेता है। यह जो कुछ है वह सव वासुदेव सव कारणों का भी कारण है ऐसा मानने वाला महात्मा वहुत ही दुर्लभ है।"

(श्रीमद्भगवद्गीता ७·१९)

ईश्वर के ज्ञान के लिए दार्शनिक खोज अनेक जन्मों तक करनी होती है। ईश्वरानुभूति वहुत सरल है तथा साथ ही साथ वहुत कठिन भी है। जो व्यक्ति कृष्ण के वचनों को परम सत्य के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, उनके लिए तो यह अनुभूति वहुत सरल है, किन्तु जो लोग अपनी दार्शनिक खोजों का आश्रय लेते हैं, उन्हें श्रद्धा और विश्वास प्राप्त करने के लिए ज्ञान के क्रमिक विकास सोपानों से गुजरना पड़ता है और इस प्रक्रिया में कई जन्म लग जाते हैं। परमसत्य को जानने वाले दिव्यानुभूति का आस्वादन करने वाले भिन्न-भिन्न तत्त्ववित् ज्ञानी लोग हैं। ज्ञानी लोग चरम सत्य को अद्वैत मानते हैं। उसमें द्वैत नहीं।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि परम सत्य के तीन पक्ष ज्ञातव्य हैं— १. ब्रह्म, २. परमात्मा और ३. भगवान्। इस प्रकार यह तीनों दृष्टिकोण हैं जिससे परमसत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है। कोई व्यक्ति एक पहाड़ को वहुत दूर से देखकर एक दृष्टिकोण से इसका अनुभव कर सकता है। जैसे ही वह निकट आता है, वह पहाड़ के लता, वृक्ष और गुल्म भी देख सकता है, और यदि वह पहाड़ पर प्रत्यक्ष रूप से चढ़ने लगता है तो उसे वहाँ वृक्षों, पौधों और पशुओं में वहुत कुछ का पता चलेगा। लक्ष्य एक ही है, किन्तु दृष्टिकोणों की भिन्नता के कारण ऋषियों द्वारा परमसत्य की भिन्न-भिन्न परिकल्पनाएँ की गई हैं। एक दूसरा उदाहरण लीजिए—धूप है, सूर्य-विम्व है, और सूर्य देवता है। जो व्यक्ति धूप में है, यह दावा नहीं कर सकता कि वह स्वयं सूर्य में है और जो व्यक्ति सूर्य में स्थित है, वह देखने के दष्टिकोण से अच्छी स्थिति में है। धूप की तुलना हम सर्वव्यापिनी ब्रह्मज्योति से कर सकते हैं। सीमित सूर्य विम्व की तुलना ब्रह्म के सीमित पक्ष परमात्मा से की जा सकती है, और सूर्य देवता जो सूर्य विम्व में निवास

करते हैं, उनकी तुलना भगवान् से की जा सकती है। जैसे इस पृथ्वीग्रह पर जीवों के अनेक भेद हैं, हम वैदिक साहित्य से समझ सकते हैं कि वैसे ही सूर्य भी जीवों की विभिन्न कोटियाँ हैं, किन्तु उनके शरीर अग्निमय हैं, ठीक वैसे ही जैसे हमारे शरीर पार्थिव हैं।

भौतिक प्रकृति में पाँच स्थूल तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। भिन्न-भिन्न ग्रहों में इन पाँच तत्त्वों में से किसी एक की प्रधानता के कारण भिन्न-भिन्न वातावरण हैं, और उनमें भिन्न-भिन्न शरीर हैं। क्योंकि किसी एक तत्त्व से निर्मित जीव जीवों की प्रधानता हो सकती है। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि सभी ग्रहों में एक ही प्रकार का जीवन है। तथापि इस अर्थ में इसमें समानता है कि ये पाँच तत्त्व किसी न किसी रूप में वहाँ विद्यमान हैं। इस प्रकार किसी ग्रह में पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता है, किसी में अग्नि तत्त्व की, किसी में जल तत्त्व की, किसी में वायु तत्त्व की और किसी में आकाश तत्त्व की प्रधानता है। इसलिए हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि कोई ग्रह मुख्यतया पृथ्वी तत्त्व से निर्मित है, और चूँकि उस ग्रह का वातावरण हमारे ग्रह जैसा नहीं है, तो वहाँ जीवन ही नहीं है। वैदिक साहित्य हमें बताता है कि ब्रह्माण्ड में भिन्न-भिन्न शरीर वाले जीवों से भरे हुए असंख्य ग्रह हैं। जिस प्रकार कुछ भौतिक व्यवस्था करके हम भिन्न-भिन्न भौतिक ग्रहों में प्रवेश करने की क्षमता प्राप्त कर सकते हैं जहाँ परम प्रभु निवास करते हैं।

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

"जो लोग देवताओं को पूजते हैं, वे देवलोक में जाते हैं, अर्थात् देवताओं में जन्म लेते हैं, जो लोग पितरों को पूजते हैं, वे पितरों को प्राप्त होते हैं, जो लोग भूतों को पूजते हैं, वे

भूतों को प्राप्त होते हैं, और मेरे उपासक (भक्त) मुझे ही प्राप्त होते हैं। अर्थात् मेरे भक्तों का पुनर्जन्म नहीं होता।"

(श्रीमद्भगवद्गीता ९-२५)

जो लोग उच्चतर ग्रहों में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे हैं, वे उनमें जा सकते हैं और जो लोग कृष्ण के ग्रह गोलोक वृन्दावन में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे हैं, वे भी कृष्ण-भावना की प्रक्रिया से ऐसा कर सकते हैं। कहीं जाने से पूर्व हमें उसका वर्णन प्राप्त कर लेना चाहिए कि वह देश कैसा है, क्योंकि किसी स्थान के विषय में सुनना ही उसका प्रथम अनुभव है। इसी प्रकार यदि हमें उस ग्रह का परिचय पाना है, जहाँ भगवान का धाम है, तो हमें पहले उसके विषय में सुनना होगा। हम कोई प्रयोग करके तत्काल वहाँ नहीं पहुँच सकते। यह संभव नहीं है। किन्तु हमें वैदिक साहित्य में उस दिव्यलोक के अनेक वर्णन मिलते हैं। उदाहरणार्थ ब्रह्मसंहिता में वर्णन है :

चिन्तामणिप्रकर सद्मसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मी-सहस्रशत-सम्भ्रम-सेव्यमानम्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन आदि पुरुष गोपाल गोविन्द भगवान् को भजता हूँ, जो लाखों कल्पवृक्षों से घिरे पूरक चिन्तामणि समूहों से बने भवनों में लाखों लक्ष्मियों से सादर सप्रेम सेवित हैं।" इसी प्रकार भगवद्धाम के और भी विस्तृत वर्णन हैं। ब्रह्मसंहिता में इनका विशेष रूप से स्पष्ट उल्लेख है।

जो जिज्ञासु परम सत्य की अनुभूति करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें परमसत्य के विभिन्न पक्षों पर बल देने के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। जो निराकार ब्रह्म को केन्द्र

मानकर साधना करते हैं, वे 'ब्रह्मवादी' कहलाते है। साधारणतया जो लोग परम सत्य की अनुभूति का प्रयत्न करते हैं, वे सर्वप्रथम ब्रह्मज्योति का अनुभव करते हैं। जो लोग हृदय में स्थित ईश्वर की अनुभूति करते हैं, वे परमात्मवादी कहलाते हैं। परम प्रभु अपने अंश द्वारा प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित है और ध्यान एवं धारणा द्वारा मनुष्य इस रूप का अनुभव कर सकता है। ईश्वर न केवल प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित हैं अपितु सृष्टि के प्रत्येक अणु में भी व्याप्त है। यह परमात्मानुभव द्वितीय सोपान तृतीय और अन्तिम सोपान है साक्षात् भगवान की अनुभूति। अनुभूति की तीन प्रमुख भूमिकाएँ हैं अतः सर्वोच्च परमसत्य भगवत-रूप की अनुभूति एक जन्म में नहीं हो पाती। इसलिए कहा गया है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

यदि कोई सौभाग्यशाली हो तो अन्तियसत्य के दर्शन एक क्षण में हो सकते हैं। किन्तु साधारणतया ईश्वर तत्त्व का रहस्य जानने में अनेक वर्ष और अनेक जन्म लग जाते हैं।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव समन्विता॥

"मैं वासुदेव ही समस्त आध्यात्मिक और भौतिक जगत् की उत्पत्ति का कारण हूं। मुझसे ही समस्त जगत् चेष्टा करता है। इस प्रकार समझकर बुद्धिमान् भक्त जन श्रद्धा और भक्ति से युक्त हुए मुझे ही भजते हैं।"

(श्रीमद्‌भगवद्‌गीता-१०-८)

वेदान्त सूत्र भी प्रमाणित करते हैं कि परम सत्य वही है, जिससे सबका जन्म होता है। यदि हम वस्तुतः मानने लगे कि कृष्ण ही सबके उद्‌गम है, और हम उसकी आराधना करें तो हमारे समस्त कर्मों का खाता एक क्षण में ही वन्द हो जाय।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञान सहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।।

"हे अर्जुन, मुझमें दोष दृष्टि न रखने वाले तुझ प्रेमी भक्त के लिए मैं इस परम गोपनीय ज्ञान को रहस्य सहित कहूँगा, जिसे जानकर तू इस दुःखमय भौतिक संसार से मुक्त हो जायगा ।" (श्रीमद्भगवद्गीता-९-१)

श्रीमद्भगवद्गीता में कथित ईश्वर का ज्ञान वहुत सूक्ष्म और गोपनीय है । यह ज्ञान आध्यात्मिक और वैज्ञानिक है । यह रहस्यमय भी है । इस ज्ञान को मनुष्य कैसे आत्मसात् कर सकता है ? या तो यह ज्ञान स्वयं ईश्वर द्वारा उपदिष्ट हो या ईश्वर के किसी प्रामाणिक प्रतिनिधि द्वारा । इसीलिए श्री कृष्ण कहते हैं कि जव कभी भी ईश्वर के विज्ञान को यथार्थतः समझने में भ्रान्ति होती है, वे अवतार लेते हैं ।

ज्ञान भावुकता से भी नहीं प्राप्त होता । भक्ति कोरी भावुकता नहीं है । यह एक विज्ञान है ।

श्रीलरूपगोस्वामी कहते हैं, "वैदिक ज्ञान से असम्वद्ध आध्यात्मिकता का कोरा प्रदर्शन समाज के लिए विघ्न है । मनुष्य को भवित के अमृत का आस्वादन बुद्धि, तर्क और ज्ञान के द्वारा करना चाहिए और तव उसे दूसरों को कराना चाहिए ।" किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि कृष्ण भावना एक भावुकता मात्र है । यह नृत्य और संकीर्तन गान—सव कुछ वैज्ञानिक है । इसमें विज्ञान भी है और प्रेममय आदान-प्रदान भी । ज्ञानी को श्रीकृष्ण वहुत प्रिय है और श्रीकृष्ण को ज्ञानी श्रीकृष्ण हमारे प्रेम को सहस्त्रगना करके लौटाते हैं । सव प्रकार की सीमाओं में आवद्ध हम क्षुद्र जीवों की सामर्थ्य ही क्या है कि कृष्ण से प्रेम कर सकें ? किन्तु कृष्ण में प्रेम की अद्भुत और असीम सामर्थ्य है ।

किन्तु यदि कोई व्यक्ति ऐसा विश्वास न करके कहे, "मैं तो स्वयं ही देखना चाहता हूं कि ईश्वर क्या है" तो उसे क्रमशः सोपानों से चलना पड़ेगा। पहले ब्रह्मज्योति की अनुभूति, फिर परमात्मा की अनुभूति और सबसे अन्त में भगवान की अनुभूति होगी। यह समझ लेना चाहिए कि इस प्रक्रिया में बहुत समय लगता है। जब अनेक वर्षों की खोज के उपरान्त साधक को परम सत्य की अनुभूति हो जाती है तो वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि "वासुदेवः सर्वमिति" "यह सब कुछ वासुदेव है।" वासुदेव, कृष्ण का एक नाम है, और इसका अर्थ है; 'वे प्रभु जो सर्वत्र व्याप्त है।' वासुदेव ही सबका मूल है, यह अनुभव करके मनुष्य प्रभु की शरण में जाता है—'मां प्रपद्यते।' शरणागति ही चरम लक्ष्य है। चाहे इसे कोई तुरन्त ग्रहण कर ले चाहे अनेक जन्मों के उपरान्त। दोनों ही स्थितियों में शरणागति होनी चाहिए कि "प्रभु महान् है और मैं उनका तुच्छ सेवक हूं।" इस रहस्य को जानकर बुद्धिमान पुरुष तुरन्त कृष्ण की शरण ले लेता है और अनेक जन्म लेने के लिए प्रतीक्षा नहीं करता। वह समझ लेता है कि यह रहस्य प्रभु ने जीवों पर अपनी अनन्त कृपा के कारण ही प्रकट किया है। हम सभी त्रिगुणात्मिका प्रकृति के त्रिविध तापों को भोगते हुए जीव हैं। इस मानव देह में प्रभु अपनी शरण गति का उपदेश देकर हमें इन त्रिविध तापों से मुक्त होने का सुअवसर दे रहे हैं।

यहाँ कोई जिज्ञासु यह पूछसकता है कि जब परम प्रभु ही मनुष्य का लक्ष्य है और उसे प्रभु की शरण में जाना ही पड़ेगा, तो इस संसार में इतनी सारी उपासना पद्धतियाँ क्यों हैं? इस प्रश्न का उत्तर आगे श्लोक में दिया गया है—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्य देवता:।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियता: स्वया॥

"अनेक भोगों की कामना द्वारा जिनका ज्ञान नष्ट हो गया है, ऐसे लोग अपनी प्रकृति से प्रेरित होकर विशेष नियम से अन्य देवताओं की पूजा करते हैं।"

(श्रीमद्‌भावद्‌गीता ७-२०)

इस संसार में अनेक प्रकार के लोग हैं और वे प्रकृति के तीन गुणों के अधीन होकर कर्म करते रहते हैं। साधारणतया अधिकतर लोग मुक्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं होते। यदि वे अध्यात्म की ओर उन्मुख भी होते हैं, तो भी अपनी आध्यात्मिक शक्ति से कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। भारतवर्ष में यह कोई असाधारण वात नहीं है कि कोई व्यक्ति किसी स्वामी के पास जाकर कहे कि "स्वामी जी मैं अमुक रोग से पीड़ित हूं क्या आप मुझे कोई औषध दे सकते हैं? वह सोचता है कि एक डॉक्डर तो वहुत मँहगा पड़ता है, वह एक स्वामी के पास क्यों न जाये जो चमत्कार कर सकता है। भारत में भी ऐसे स्वामी हैं, जो लोगों के घर जाते हैं और कहते हैं यदि आप मुझे एक तोला सोना दें तो मैं उसे सौ तोले बना सकता हूं। "लोग सोचते हैं हमारे पास पाँच तोला सोना हैं क्यों न हम इसे स्वामी जी को देकर पाँच सौ तोले वनवालें।" इस प्रकार स्वामी जी गाँव भर का सारा सोना वटोर कर गायव हो जाते हैं।

यही हमारी वीमारी है। जव हम किसी स्वामी के पास या मन्दिर मस्जिद, चर्च में जाते हैं तो हमारे हृदय किसी न किसी भौतिक कामना से भरे होते हैं। आध्यात्मिक जोवन से भी कुछ न कुछ भौतिक ज्ञान चाहते हुए हम स्वास्थ्य के लिए योगाभ्यास करते हैं, किन्तु स्वस्थ रहने के लिए योग की शरण क्यों लेते हैं? स्वस्थ तो हम नियमित व्यायाम और

आहार से भी रह सकते हैं। फिर योग का आश्रय क्यों लेते हैं? इसलिए कि हम में स्वयं को स्वस्थ रखने की कामना है जिससे हम जीवन में भोगों को प्राप्त कर सकें। हम इसीलिए मन्दिर में जाते हैं कि भगवान् हमारे भोगों की पूर्ति करता है।

भौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिए मनुष्य विभिन्न देवताओं की उपासना करते हैं। वे पंच तत्वों से परे जाने का कोई विचार ही नहीं रखते। वे तो इस भौतिक जगत् का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहते हैं। उदाहरणार्थ वैदिक साहित्य में अनेक उपाय वताये गये हैं। यदि किसी को अपने किसी रोग से छुटकारा पाना है, तो उसे सूर्य की उपासना करनी चाहिए। यदि किसी कन्या को उत्तम वर चाहिए तो वह शिव की उपासना करती है। यदि किसी को सौंदर्य चाहिए तो वह अमुक देवता को पूजता है और यदि किसी को विद्या की कामना है तो वह देवी सरस्वती की उपासना करता है।

इस प्रकार पाश्चात्य लोग प्राय: सोचते हैं कि हिन्दू जाति वहुदेव पूजक है, किन्तु वास्तव में यह पूजा ईश्वर की नहीं, अपितु देवताओं की है। ईश्वर तो एक ही है, किन्तु देवता वहुत हैं जो हमारी भाँति जीव ही हैं। अन्तर केवल यह है कि उनमें हमारी अपेक्षा वहुत अधिक शक्ति है। इस पृथ्वी पर कोई राजा हो, या राष्ट्रपति, या तानाशाह, ये सव हमारी भाँति मनुष्य हैं, किन्तु उनमें कुछ असाधारण शक्ति होती है, और उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए, उनकी शक्ति का लाभ उठाने के लिए हम किसी न किसी प्रकार उनकी पूजा ही करते हैं किन्तु श्रीमद्भगवद्गीता देवताओं की पूजा के पक्ष में नहीं है। इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि लोग काम भौतिक लाभ के लिए देवताओं की पूजा करते हैं।

यह भौतिक जीवन केवल काम पर आधारित है। हम इस

संसार का सुख उठाना चाहते हैं, हम इस संसार से प्रेम करते हैं क्योंकि हम अपनी इन्द्रियों को तृप्त करना चाहते हैं। हमारी यह काम भावना हमारे ईश्वर के प्रति प्रेम का विकृत प्रतिबिम्ब है। अपने मूल स्वरूप में हमारा निर्माण ईश्वर से प्रेम करने के लिए हुआ है, किन्तु चूँकि हम भगवान् को भूल गये हैं, इसलिए हम जड़ जगत् को प्यार करने लगे हैं। किन्तु प्रेम तो यहाँ भी विद्यमान है ही। या तो हम जड़ तत्त्वों से प्रेम करेंगे या भगवान् से किन्तु किसी भी स्थिति में हम प्रेम की इस सहज प्रवृत्ति से बाहर नहीं जा सकते। कई बार हम देखते हैं कि जिस व्यक्ति के बच्चे नहीं होते, वह बिल्ली या कुत्ते को प्यार करने लगता है। क्यों? क्योंकि हम किसी न किसी से प्रेम करना चाहते हैं, हमें इसकी अनिवार्य आवश्यकता है। सत्य के अभाव में अपना प्रेम और विश्वास कुत्ते और बिल्लियों में स्थापित कर देते हैं। प्रेम सदैव विद्यमान है, किन्तु वह काम के विकृत रूप में रहता है। अब यह काम अपूर्ण या अतृप्त रह जाता है तो हम क्रुद्ध हो जाते हैं, क्रोध से संमोह होता है और संमोहित होने पर हमारा नाश ही हो जाता है। यही चक्र चल रहा है। किन्तु हमें इसकी दिशा बदलनी होगी और काम को प्रेम में परिवर्तित करना होगा। यदि हम प्रभु से प्रेम करें तो हम सबसे प्रेम करने लगेंगे। किन्तु यदि हम प्रभु से प्रेम न करें तो किसी से प्रेम करना सम्भव नहीं है। हम सोचते हैं कि यह प्रेम है, किन्तु होता है वह प्रेम की चकाचौंध लिये केवल काम ही। जो लोग काम के कुत्ते हो गये हैं, उनके लिए कहा जाता है कि उनकी सारी सद्वृत्तियाँ मारी गई हैं। ऐसे ही लोगों के लिए गीता में "**कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः**" कहा गया है।

शास्त्रों में देवताओं की पूजा के बहुत से विधिविधान हैं, और कोई भी व्यक्ति यह प्रश्न कर सकता है कि वैदिक

साहित्य में उनकी संस्तुति क्यों की गई। इसकी आवश्यकता है। जो लोग काम-प्रेरित हैं, वे किसी न किसी से प्रेम करने का सुअवसर चाहते हैं, और देवता लोग सर्वोच्च प्रभु के अधिकारी-सेवक माने गये हैं। इसका उदेद्श्य यह है कि जैसे कोई व्यक्ति इन देवताओं की उपासना करता है, वैसे ही वह धीरे धीरे स्वयं में कृष्ण भावना का विकास कर लेगा। किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी भी सत्ता के प्रति पूर्णतया नास्तिक, उद्दण्ड और विद्रोही है, तो उससे क्या आशा की जा सकती है? अत: किसी व्यक्ति की किसी उच्चतर सत्ता के प्रति आस्था का आरम्भ देवताओं की आराधना से हो सकता है।

किन्तु यदि हम सीधे परम प्रभु कृष्ण की उपासना करें तो देवताओं की आराधना की कोई आवश्यकता नहीं है। जो लोग सीधे परम प्रभु की उपासना करते हैं, वे देवताओं के प्रति पूरे सम्मान का भाव रखते हैं, किन्तु उन्हें देवताओं की आराधना की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे जानते है कि देवताओं के पीछे सर्वोच्च शक्ति तो सर्वशक्तिमान् परम प्रभु भगवान् कृष्ण की ही है। और वे उनकी उपासना में संलग्न हैं। प्रत्येक स्थिति में आस्था और सम्मान भाव तो रहता ही है। कृष्ण का भक्त तो चींटी का भी आदर करता है, फिर देवताओं के लिए तो कहना ही क्या है? भक्त जानता है कि प्रत्येक प्राणी परम प्रभु का ही अंश है और प्रत्येक प्राणी भिन्न-भिन्न भूमिका निभा रहा है।

प्रभु के सम्बन्ध से सभी प्राणी सम्मान के पात्र हैं। इसलिए भक्त दूसरों को भी 'प्रभु' कहकर सम्बोधित करता है। नम्रता और दैन्य प्रभु के भक्त की एक विशेषता है। भक्त दयालु और आज्ञाकारी होते हैं और उनमें सभी सद्गुण होते हैं। सारांश यह है कि यदि कोई व्यक्ति भगवान् का भक्त बन जाता है, तो समस्त सद्गुण उसमें स्वत: विकसित हो

जाते हैं। अपने मूल स्वरूप में तो प्रत्येक जीव पूर्ण है, किन्तु काम-दोष से दूषित हो जाता है। सुवर्ण का छोटे से छोटा खण्ड भी सुवर्ण ही होता है। इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्म का अंश जीव भी पूर्ण ही होता है।

ओ३म्पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

"सगुण साकार ब्रह्म (भगवान्) पूर्ण हैं। उन पूर्ण से उद्भूत यह दृश्यमान् जगत् भी सब प्रकार से पूर्ण है। पूर्ण से जो उत्पन्न होता है वह भी स्वयं में पूर्ण ही होता है। उस पूर्ण से अनेक पूर्ण इकाइयाँ उत्पन्न होने पर भी वह ब्रह्म पूर्ण ही शेष रहता है।" (श्री ईशोपनिषद्, मंगलाचरण)

भौतिक तत्त्वों के संग दोष से प्रभु का पूर्णांश रूप यह जीव अधःपतित होता है, किन्तु कृष्णभावना की इस प्रक्रिया से वह पुनः पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है। इस भावना से वह वस्तुतः आनन्दित हो सकता है और इस भौतिक शरीर को छोड़ने के अनन्तर उस परमधाम को प्राप्त करता है जहाँ अनन्त जीवन, अक्षय आनन्द और पूर्ण ज्ञान है।

●
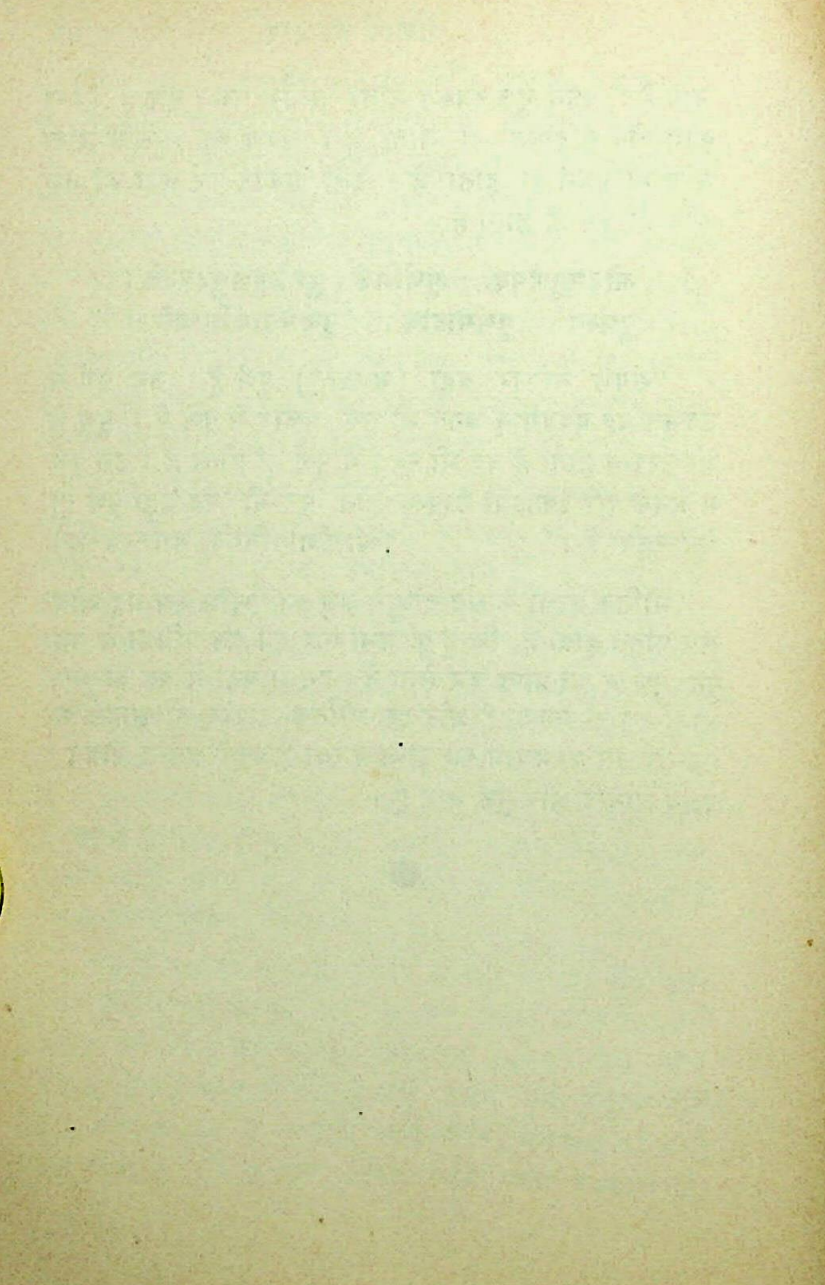
दिव्य निमंत्रण

श्रीकृष्ण भावनामय अशा आनंदपूर्ण जीवनाचा अनुभव घ्या! तुम्ही कोणत्याही जातीचे, पंथाचे वा वर्णाचे असला तरी या हरे कृष्ण धामाला भेट देण्याचें आणि या भेटींत श्रीकृष्णसंकीर्तन नृत्य व तत्त्वबोध यांनी युक्त असलेल्या कार्यक्रमाचा अनुभव घेण्याविषयींचे निमंत्रण आम्ही तुम्हांपैकी प्रत्येकास करितो. हा कार्यक्रम दररोज सकाळीं ६-३० ते ८-३० वाजेपर्यंत व रात्री ७ ते ९ वाजेपर्यंत चालतो. आमच्या हरेकृष्ण समारंभाला आणि तेथील अलौकिक दिव्य प्रेमपूर्ण उत्सवाला उपस्थित व्हा. हा उत्सव समारंभ दर रविवारी सकाळीं ११ ते दुपारी १ वाजेपर्यंत आणि सायंकाळी ५ ते ९ वाजेपर्यंत चालतो.

तुमच्या सात्त्विकतेचा विकास करा. तुम्ही आमच्या आश्रमांत एक दिवस, एक आठवडा, एक महिना, अथवा अधिक दिवस रहा. सकाळीं लवकर उठा, आणि सुंदर मंगल आरतीला उपस्थित रहा. हरेकृष्ण या प्रभावशाली महामंत्राचा जप करा, आत्मसाक्षात्कार करून देणारे जे अलौकिक शास्त्र त्याचें श्रवण करा. हरेकृष्ण आश्रमाचे संस्थापक, आचार्य, भगवत्कृपामय सद्गुरु श्री. अे. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपादचे व त्यांचे शिष्यांचे गुरुपुजन प्रसंगी आपण उपस्थित रहा. आणि मधुर प्रसाद सेवन करा. आत्मशुद्धीकरितां खालील चार तत्त्वांचेहि पालन करा, आणि त्यापासून होणाऱ्या उत्साहवर्धक परिणामाचा प्रत्यय पहा.—

(१) मांस, मासे, अंडी या पदार्थांचे भक्षण वर्ज्य.

(२) चहा कॉफीसह मादक पदार्थ वर्ज्य.

(३) परस्त्रीसंबंध वर्ज्य.

(४) जुगार वर्ज्य.

प्रेम आणि ईश्वराची सेवा ही जीवनाची अंतीम परिपूर्णता आहे त्याकरितां जे प्रयत्न करतात त्यांच्यासाठीं हरे कृष्ण धाम हे आदर्श ठिकाण आहे. कृपया आम्हाला भेटा किंवा अधिक तपशिलासाठी श्री. अमोघलीला दास यांच्याशी हरे कृष्ण भूमि, जुहू, मुंबई ४०० ०४९ या पत्त्यावर त्वरित संपर्क साधा. हरे कृष्ण

विश्वभरके इस्कॉन केन्द्रोंकी सूची

AFRICA: Durban (Natal), S. Africa—P.O Box 212, Cato Ridge, Natal 3680 / Cato Ridge 237; Mombasa, Kenya, E. Africa—Madhavi House, Sauti Ya Kenya and Kisumu Rd., P.O. Box 82224 / 312248, Nairobi, Kenya, E. Africa—Muhoroni Close, West Ngara Rd., P.O. Box 28946 / 331568; Mauritius—Seewoo tul Bldg., Royal Rd., Lallmatie (mail: P.O. Box 718, Port Louis, Mauritius)

ASIA: Ahmedabad, India—7 Kailas Society, Ashram Rd., Ahmedabad-1, Gujarat; Bangalore, India—39 Cresent Rd., Bangalore 1. Bhadrak, India—Gour Gopal Mandir, Kuans, P.O. Bhadrak, Dist. Balasore, Orissa. Bhubaneswara, India—National Highway No. 5, Nayapalli/ 53125 (mail. c/o P.O. Box 173, Bhubaneswara, Orissa 751001); Bombay, India—Hare Krishna Land, Gandhi Gram Rd., Juhu, Bombay 400 054 / 679-373; Calcutta, India—3 Albert Rd., Calcutta 700 017 / 44-3757, Chandigarh, India—Hare Krishna Land, Dakshin Marg, Sector 36-B, Chandigarh 160 023; Chhaygharia (Haridaspur), India—Thakur Haridas Sripatbari Sevashram, P.O. Chhaygharia, P.S. Bongaon, Dist. 24 Parganas, W. Bengal; Colombo, Sri Lanka—188 New Chetty St., Colombo 12; Hong Kong—30C Hing Yip Terrace, 1st fl., Pai Tau Village, Shatin N.T., Kowloon; Hyderabad, India—Hare Krishna Land, Nampally Station Rd., Hyderabad, A.P. 500 001, Kathmandu, Nepal—8/6, Battis Putali, Goshalla; Manipur, India—Paona Bazar, Imphal, Manipur 795001; Mayapur, India—Shree Mayapur Chandrodoya Mandir, P.O. Shree Mayapur Dham, W. Bengal (District Nadia); New Delhi, India—21A Feroze Gandhi Rd., Lajpat Nagar III, New Delhi 110 024 / 624-590; Tehran, Iran—3 Shemshad, Avenue Kakh / 644272; Tel Aviv, Israel—c/o Lewis F. Einhorn, P.O. Box 38644; Vrindavan, India—Krishna-Balarama Mandir, Bhaktivedanta Swami Marg, Raman Reti, Vrindavan, Mathura, U.P.
FARMS: Hyderabad, India—P.O. Dabilpur Village, Medchal Taluq, Hyderabad District 501401; Mayapur, India—(contact ISKCON Mayapur).

EUROPE: Amsterdam, Holland—Herengracht 96 / 020-249-410; Barcelona, Spain—Pintor Fortuny 11, Barcelona, 1 / 3180375; Dublin, Ireland—2 Belvedere Place, Dublin 1; Duedingen, Switzerland—Im Stillen Tal, CH 3186 Duedingen (FR)/ (037) 43 26.97; Frankfurt a. Main, W. Germany—Schloss Rettershof uber, 6233 Kelkheim, Ts. / 06174-21357; London, England (city)—7 Bury Pl., Bloomsbury, London WC1 / 01-405-1463; London, England (country)—Bhaktivedanta Manor, Letchmore Heath, Watford, Hertfordshire WD2 8EP / Radlett 7244; Madrid, Spain—c/o Antonio Acuna F. Segundo Centro, Madrid 9; Paris, France—4 rue Le Sueur, Paris 75016 / 727-0202; Rome, Italy—Viale Di Porta Ardeatina No. 53 Angio Christopher Colombo-2, Rome 00154 / 5740416, Stockholm, Sweden—Korsnas Gard, 140 32 Grodinge / 0753-29151.
FARMS: Indre, France (New Māyāpur)—Lucay-Le-Male, 36600 Valencay Chateau d'Oublaise / 12-07-25-0608, London, England—(contact Bhaktivedanta Manor), Perignano, Italy—Via Delle Colline, Localita, La Meridiana, Perignano, Pisa / (0587)-616194

LATIN AMERICA: Belo Horizonte, Brazil—Rua Araxa, 91, Brazil 30,000 / 442-1810; Bogota, Colombia—Carrera 3A No. 54-A-72 / 460091; Caracas, Venezuela—Calle Luis Roche No. 61, Colinas de los Chaguaramos/ 751-3026, Ciudad Bolivar, Venezuela—Paseo Heres, Cruce con Avenida Maracay No. 19, Casa Esquina, Gruabo, Puerto Rico—Box 215 B, Route 181 Santurce 00658; Guadalajara, Mexico—Avenida Vallarta 2035, Sector Juarez / 157498, Guatemala City, Guatemala—Segunda Calle 6-26 Zona 13, 310833, Guayaquil, Ecuador—Calle Bolivia No. 513 Y Chimborazo, La Paz, Bolivia—P.O. Box 10278, Miraflores, Lima, Peru—976 Jiron Juan de la Fuente, San Antonio Miraflores / 47-18-10; Maracaibo, Venezuela—Carretera Parça Km. 2, Colonia John Kalimnios, Casa No. 6, Mexico City, Mexico—Gob. Tiburcio Montiel 45, San Miguel Chapultepec, Mexico D.F. 18 / (905)277-3124; Recife, Brazil—Rua Leonardo Arco Verde 211, Madalena, Pernambuco, Brazil 50 000, Rio de Janeiro, Brazil—Estrada Velha da Tijuca, 102, Usina; Salvador, Brazil—Rua Alvaro Adorno, 13, Brotas, Brazil 40,000 / (071)244-1072; St. Augustine, Trinidad and Tobago—Gordon St. at Santa Margarita Circular Rd. / 662-4605, San Pedro, Costa Rica—c/o ISKCON, C 3ª A 4ª Montes de Oca / 25-44-57; Santiago, Chile—Eyzaguirre 2404, Puente Alto / 283, Santo Domingo, Dominican Republic—Calle Cayetano Rodriguez No. 36 / 668-1318, Sao Paulo, S.P., Brazil—Rua Pandiá Calógeras, 54, Liberdade, CEP 01525 / 279-3497, Valencia, Venezuela—Carretera Vieja No. 42, La Entrada
FARMS: Petropolis, Brazil (New Ayodhyā)—(contact ISKCON Rio de Janeiro)

NORTH AMERICA (CANADA): Calgary, Alberta—5324 Second St. S.W., T2H 0G7/ (403)259-4190, Edmonton, Alberta—10745 111th st., T5H 3G2/ (403)424-1797; Montréal, Québec—1626 Pie IX Boulevard H1V 2C5/ (514) 527-1101; Ottawa, Ontario—1429 Cyrville Rd. K1B 3L7 / (613)741-8518, Toronto, Ontario—243 Avenue Rd. M5R 2J6 / (416)922-5415, Vancouver, British Columbia—1774 West 16th Ave. V6J 2M1 / (604)732-8422.

(U.S.A.): Ann Arbor, Michigan—718 W. Madison St. 48103 / (313)665-6304, Atlanta, Georgia—1287 Ponce de Leon Ave. NE 30306 / (404)378-9182; Baltimore, Maryland—200 Bloomsbury Ave., Catonsville 21228 / (301)-747-9815; Berkeley, California—2334 Stuart St. 94705 / (415) 843-7874; Boston, Massachusetts—72 Commonwealth Ave. 02116 / (617)247-7300, Chicago, Illinois—1014 Emerson St., Evanston 60201 / (312)273-3960, Cleveland, Ohio—15720 Euclid Ave., E. Cleveland 44112 / (216)851-9367, Columbus, Ohio—99 East 13th Ave. 43201 / (614) 299-5084; Dallas, Texas—5430 Gurley Ave. 75223 / (214)827-6330; Denver, Colorado—1400 Cherry St. 80220 / (303)333-5461; Detroit, Michigan—383 Lenox Ave. 48215 / (313)824-6000; Gainesville, Florida—921 S.W. Depot Ave. 32601 / (904)377-1496, Harrisburg, Pennsylvania (Rādhā-Damodara traveling temples)—5431 Jonestown Rd. 17112 / (717)657-0418; Honolulu, Hawaii—51 Coelho Way 96817 / (808)595-3947; Houston, Texas—1111 Rosalie St. 77004 / (713)526-9004, Laguna Beach, California—644 S. Coast Hwy. 92651 / (714)-497-3638; Las Vegas, Nevada—2600 Demetrius 89101 / (702)642-3884; Los Angeles, California—3764 Watseka Ave. 90034 / (213) 871-0717, Miami, Florida—10900 Coral Way 33165 / (305)552-1766; Minneapolis, Minnesota—216 Ridgewood Ave. 55403 / (612)874-9359; New Orleans, Louisiana—2936 Esplanade Ave. 70119 / (504)488-7433; New York, New York—340 W. 55th St. 10019 / (212)765-8610, Philadelphia, Pennsylvania—41-51 West Allens Lane, 19119 / (215)247-4600; Pittsburgh, Pennsylvania—4626 Forbes Ave. 15213 / (412)-683-7700; Portland, Oregon—2805 S.E. Hawthorne St. 97214 / (503)231-5792; St. Louis, Missouri—4544 Laclede Ave. 63108 / (314)361-1224; Salt Lake City, Utah—859 Park St. 84102 / (801)355-2626, San Diego, California—1030 Grand Ave., Pacific Beach 92109 / (714)483-2500, Seattle, Washington—400 18th Ave. East 98102 / (206)-322-3636, Washington, D.C.—10310 Oaklyn Rd., Potomac, Maryland 20854 / (301)299-2100.
FARMS: Carriere, Mississippi (New Tālavan)—Rt. No. 2, Box 449, 39426 / (601)798-6705, Gainesville, Florida—contact ISKCON Gainesville, Hopland, California (New Hrishikesh)—Route 175, Box 469, 95449, Lynchburg, Tennessee (Murāri-sevaka)—Rt. No. 1, Box 146-A, (Mulberry) 37359 / (615)759-7058, Moundsville, West Virginia (New Vrindāban)—R.D. No. 1, Box 620, 26041 / (304)845-2790, Port Royal, Pennsylvania (Gītā-nāgari)—R.D. No. 1, 17082 / (717)527-2493.

SOUTH SEAS: Adelaide, Australia—13-A Frome St / 2235115, Auckland, New Zealand—67 Gribblehirst Rd., Mt. Albert / 668-763, Lautoka, Fiji—5 Tavewa Ave / 61-633 ext. 48 (mail c/o P.O. Box 125); Melbourne, Australia—197 Danks St., Albert Park, Melbourne, Victoria 3206 / 699-5122 (mail c/o P.O. Box 125); Sydney, Australia—50 Buckingham St., Surry Hills / 699-4563 (mail c/o P.O. Box 170, Alexandria, N.S.W. 2015).
FARMS: Auckland, New Zealand (New Varshana)—Hwy 18, Riverhead (mail: R.D. 2, Kumeu, Auckland N.Z.), Murwillumbah, Australia (New Govardhana)—Eungella, Tyalgum Rd. Via Murwillumbah N.S.W., 2484 / 066-721903 (mail c/o P.O. Box 687)

भगवत्कृपामय
श्रील ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
संस्थापक आचार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावना सङ्घ